मुण्डकोपनिषत् - with the commentary in Sanskrit and Hindi by प्रीतम सेन शर्मा, Etawah, nd.

1250

10

Veda.

Bill No. 5/07-08

2.63

x 800-0725

ओ३म् ॥

अथ मुण्डकोपनिषत्सभाष्या

श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्य्यवर्य्य

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनां

शिष्येण भीमसेनशर्मणा

लोकोपकाराय संस्कृतभाषयाऽर्य्य

भाषया च व्याख्याता ॥

MUNDKOPNISHAT
with
commentary
of
BHIM SEN SHARMA

सरस्वतीयन्त्रालय-इटावा में

मुद्रित हुई

Saraswati Press Etawah.

ओ३म् ॥

अथ मुण्डकोपनिषत्सभाष्यम्

श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्य्यवर्य्य

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनां

शिष्येण भीमसेनशर्मणा

लोकोपकाराय संस्कृतभाषयाऽऽर्य्य

भाषया च व्याख्याता ॥

इस [illegible] किसी को

छापने का अधिकार नहीं है ॥

MUNDKOPNISHAT

with

commentary

of

BHIM SEN SHARMA

सरस्वतीयन्त्रालय-इटावा में

मुद्रित हुई

Saraswati Press Etawah.



अथाथर्ववेदीयमुण्डकोपनिषत्प्रस्तावः

यथा मूलवेदादितरास्तलवकाराद्याः सर्वा उपनिषदः शिष्यप्रशिष्यपरम्परयातिपुरातनकालात्पठनपाठनव्यापारान्तर्गताः प्रवर्त्तन्ते। यथा च कठोपनिषदि यमनचिकेतसोः संवादो मूलम्। स च केनचिच्छिष्येण याथातथ्येन श्रुतोऽन्यस्मै स्वशिष्यायोपदिष्टस्तेन चान्यस्मै तेनाप्यन्यस्मा इत्येवं बहुकालात्प्रवृत्तः केनचिच्छिष्येण पुस्तकाकारे संयोजितस्तेनैवोक्तम्–उशन्ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस। नचेदं वचो यमनचिकेतसोरन्यतरस्य भवितुमर्हति। किन्तु ताभ्यामितरस्य तृतीयस्येदं कथनम्। तथैवास्यामपि बोध्यम्। कल्पारम्भे समुद्भूतेन ब्रह्मणा वेदपारगत्वात् सर्वविद्यासागरेणेयं वेदान्तविद्या मुण्डकोपनिषत्प्रतिपादिता पूर्वमथर्वणे स्वशिष्यायोपदिष्टा तेन चान्यस्मा अन्येन चान्यस्मै। एवं शिष्यप्रशिष्यपरम्परया प्रवृत्ता। अनन्तरं शौनकेनर्षिणाऽङ्गिरसतो यथा प्राप्ता साऽन्यशिष्येण श्रुता पुस्तकाकारे संयोजिता च। तदुपक्रान्तमेवादौ मन्त्रत्रयमस्ति। नाम च तस्य नास्ति। नह्याधुनिकाइव पूर्वजा

अपि रजोगुणग्रस्ताः स्वनाम्नः प्रचाराय प्रतिष्ठायै वा प्रयतितवन्तइति तेतु रजोगुणात्प्रतिष्ठातो वा विषादिव बिभ्यति स्म। तथा चोक्तं धर्मशास्त्रे—सम्मानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव। अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा। इत्यादिना प्रतीयते—पण्डिताः समदर्शिनो मानापमानादीनाम्। तस्मिन् काले सत्यपराः सत्यनिष्ठाः सत्यस्यैव प्रवर्त्तका विद्वांस आसन्। नासीत्तदानीमयं व्यापारो यन्निर्नामकान् जालग्रन्थान् वेदबाह्यान्निर्माय जगति कश्चिच्चालयेदिति यदर्थं पुस्तकेषु नामरक्षणावश्यकता स्यात्। अतोऽत्र पुस्तकनिर्मातुर्नाम नास्ति तेन निर्मात्राऽन्येषां स्वतः पूर्वजानां नामानि तु विद्याया गौरवदर्शनाय रक्षितानि। स कालइदानीं नास्ति यन्नामरक्षणमन्तरेण व्यवहारः सिध्येत्। यदि कश्चिच्छ्रेष्ठो विद्वान् स्वं नाम पुस्तके न रक्षयेन्मूढश्च कश्चिन्निर्नामकं पुस्तकमालोक्य स्वनामाङ्कितं कुर्यात्तदा नहि कश्चिन्नाम दृष्टा श्रद्दधीत द्रष्टुं च नोत्सुकः स्यादित्यादीनि प्रयोजनानि प्रतिपक्षदूषणानि चोरसि कृत्य नाम र-

क्षणीयमिति। अत्र चोक्तप्रकारेण शौनकः प्रष्टा श्रोता च। अङ्गिरा वक्ताऽस्ति। अत्र त्रीणि मुण्डकानि षट्खण्डाः सन्ति विशेषस्तत्रतत्रवक्ष्यते॥

भाषार्थः—अब अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषद् का प्रारम्भ किया जाता है। जैसे मूल वेद से भिन्न तलवकारादि सब उपनिषद् शिष्य के शिष्य आदि परस्परा से बहुत प्राचीनकाल से पठन पाठन व्यापार में प्रवृत्त चली आती हैं जैसे कठोपनिषद् में यमाचार्य और नचिकेता ऋषिपुत्र का संवाद मूल है वह संवाद किसी अन्य शिष्यने यथावत् सुना और अन्य शिष्य को उपदेश किया उस ने और को और ने और को इस प्रकार बहुत काल तक उस के पठन पाठन की प्रवृत्ति चली आई पीछे किसी शिष्य ऋषिने पुस्तकाकार बना दिया उसीने यह कहा (उशन्हवै०) कि तपस्वी तेजस्वी वाजश्रवस ऋषिने सर्ववेदस यज्ञ किया उन का पुत्र नचिकेता नामी था। यह वचन यमाचार्य वा नचिकेता में से किसी का नहीं हो सकता किन्तु उन दोनों से भिन्न तीसरे का है। वैसे ही इस मुण्डकोपनिषद् में भी जानना चाहिये इस वर्त्तमान कल्प के प्रारम्भ में ईश्वरीय सृष्टि में उत्पन्न हुए वेद के पारगन्ता होने से सब विद्याओं के समुद्र ब्रह्मा जी ने यह मुण्डकोपनिषद् रूप वेदान्त विद्या अपने मुख्य शिष्य अथर्वा ऋषि के लिये पहिले उपदेश की उस ने अन्य को और ने और को इस प्रकार शिष्य के शिष्य आदि की परस्परा से प्रवृत्त हुई। तिस पीछे शौनक ऋषि ने अङ्गिरा ऋषि से जैसे प्राप्त की उसी प्रकार अन्य शिष्य ने शौनक से सुना और पुस्तकाकार बना दी। उसी शौनक अङ्गिरा से भिन्न तृतीय ऋषि की ओर से आरम्भ के तीन मन्त्र हैं। उस का नाम यहां नहीं लिखा गया। इस का कारण यह है कि अन्य ऋषियों का नाम तो उस ने लिखा अन्य की प्रशंसा में अच्छे पुरुषों को सङ्कोच नहीं होता किन्तु आनन्द वा उत्साह होता है

परन्तु अपनी प्रशंसा स्वयं करने में सज्जन महात्माओं को अवश्य सङ्कोच होता है । वे लोग सत्वगुणी थे किन्तु आधुनिक कामी क्रोधी लोगों के तुल्य रजोगुण की रस्सी में वे नहीं फंसे थे इसी कारण वे अपने नाम और प्रतिष्ठा को बढ़ाने के उपाय में नहीं लगे रहते थे किन्तु वे लोग रजोगुण के विचार और प्रतिष्ठा से विष के तुल्य डरते थे जैसा कि मनुस्मृति धर्मशास्त्र में कहा है कि:-

(सम्मानाद्ब्रा०)-स्वधर्मनिष्ठ वेदज्ञानी ब्राह्मण को चाहिये कि विष के तुल्य सम्मान से डरता रहे और अमृत के तुल्य अपमान की काङ्क्षा रक्खे इस का प्रयोजन यह है कि जो अपमान से बचता और सम्मान चाहता है वह धर्म अधर्म का विचार वा सत्य का वर्त्ताव कदापि नहीं कर सकता । इस से प्रतीत होता है कि पण्डित वे ही हैं जो मान अपमान में समदर्शी हों । उस समय में सत्यपरायण सत्यनिष्ठ और सत्य की प्रवृत्ति करने वाले ही विद्वान् लोग होते थे । यह व्यवहार नहीं था कि विना नाम के वेद विरुद्ध जाल ग्रन्थ बनाकर कोई चला देवे जिस के लिये पुस्तकों में नाम रखने की आवश्यकता होती । इस लिये यहां पुस्तक बनाने वाले का नाम नहीं रक्खा गया पर पुस्तक कर्त्ता ऋषि ने अपने से पूर्वज गुरु आदि के नाम विद्या का गौरव दिखाने के लिये रक्खे हैं । वैसा समय अब नहीं है जो नाम रक्खे विना व्यवहार सिद्ध हो यदि कोई श्रेष्ठ विद्वान् अपना नाम पुस्तक में न रक्खे और कोई मूर्ख उस विना नाम के पुस्तक में अपना नाम रखदे तो मूर्ख के नाम से कोई भी श्रद्धा न करे और न देखने को उद्यत हो इत्यादि प्रयोजन और विरुद्ध होने में ये ही दोष जानकर अब पुस्तकों में नाम अवश्य रखना चाहिये । इस मुण्डकोपनिषद् में उक्त प्रकार से शौनक पूछने वाले और श्रोता हैं तथा अङ्गिरा वक्ता हैं । इस में तीन मुण्डक बड़े भाग हैं । और छः खण्ड हैं विशेष व्याख्या वहां २ की जायगी इति प्रस्तावः ॥

ह० भीमसेन शर्म्मणः

अथ मुण्डकोपनिषद्भाष्यारम्भः ॥

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता। ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ १ ॥

अ०—कल्पारम्भे (विश्वस्य) सर्वस्य वर्णाश्रमसम्बन्धिधर्मस्य (कर्त्ता) प्रवर्त्तकः सम्पादकः (भुवनस्य, गोप्ता) उत्पन्नस्य सर्वसाधारणाज्ञप्राणिमात्रस्य कल्पान्तरीयशुद्धसंस्कारैरुद्बुद्धविद्याबुद्धिबलेनान्धकूपादिवरक्षकः (देवानाम्) वेदविदां मध्ये सर्ववेदवित् (प्रथमः) आदिमोमुख्यो वा (ब्रह्मा) धर्मज्ञानब्रह्मवर्चसतपस्तेजःपरवैराग्यैश्वर्यादिभिः प्रवृद्धो महान् ब्रह्मा—इति नाम्ना प्रसिद्धः पुरुषः (सम्बभूव) परमात्मनः स्वाभाविक्या प्रेरणयामैथुनसंयोगमन्तरेणोत्पन्न आसीत् (सः) ब्रह्मा (सर्वविद्याप्रतिष्ठाम्) सर्वा विद्याः प्रतितिष्ठन्ति यत्र तां सर्वासां पराकाष्ठाम्। अनया ब्रह्मज्ञाने सति न किमपिज्ञातुमवशिष्यते ताम् (ब्रह्मविद्याम्) ब्रह्मज्ञानसाधनोपायरूपां वेदान्तविद्याम् (ज्येष्ठपुत्राय) सर्वपुत्रेषु श्रेष्ठाय शुचये योग्यायाप्रमत्तये शिष्याय (प्राह) ॥

भा०—कल्पारम्भेऽथर्ववेदान्मूलादाशयमाकृष्य मुण्डकनाम्ना प्रसिद्धा ब्रह्मविद्या ब्रह्मणा योग्याय स्वशिष्याय पूर्वमुपदिष्टा पश्चात् शिष्यप्रशिष्यपरम्परया प्रचारं प्राप्ता। कल्पारम्भाद्विद्याया मूलदर्शनेनास्याः प्राशस्त्यं सूच्यते। विश्वस्येति विशेषणम् । तस्यजगदिति विशेष्यं वक्तुमशक्यम् । कर्त्तुरपि कार्यान्तर्गतत्वात् वेदेष्वपि परब्रह्मणएव स्रष्टृत्वप्रतिपादनाच्च यथाथर्ववेदउच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वेदिविदेवा दिविश्रितः । इत्यादिबहुशः प्रतिपादितं येन स्पष्टं प्रतीयते यस्मादिदं सर्वं जगज्जायते स रचनात् उच्छिष्यतेऽतएव तस्योच्छिष्टमिति नामास्ति ब्रह्मा च स्वयं रचनायामागतोऽस्ति । तस्मात्तस्य सृष्टिकर्त्तृत्वं नोपपद्यते । यदि कुत्राप्येतदुपपन्नं भवेत्तर्हि तत्र परब्रह्मण एव ब्रह्मानामावगन्तव्यं धीमद्भिः ॥१॥

भाषार्थः—इस ब्राह्म कल्प के आरम्भ में (विश्वस्य) सबवर्णाश्रम सम्बन्धी धर्म के (कर्त्ता) प्रवर्त्तक वा प्रचारक (भुवनस्य) उत्पन्न हुए सर्वसाधारण प्राणीमात्र के कल्पान्तर सम्बन्धी शुद्ध संस्कारों से प्रकट हुई विद्या और बुद्धि के प्रताप से कूप से अन्धे की तुल्य रक्षा करने वाले (देवानाम्) वेदवेत्ता अग्नि आदि ऋषियों के बीच (प्रथमः) मुख्य सर्ववेद पारगन्ता (ब्रह्मा) धर्म का पूर्णज्ञान वेद और तप सम्बन्धी तेज और परवैराग्य आदि ऐश्वर्य सम्पत्ति से बढ़े हुए ब्रह्मा नामी प्रसिद्ध पुरुष (सम्बभूव) परमात्मा की स्वाभाविक प्रेरणा से स्त्री पुरुष के मैथुन संयोग के विना ही उत्पन्न हुए (सः) वे ब्रह्मा जी (सर्वविद्याप्रतिष्ठाम्) सब विद्याओं की

जिस में स्थिति हो अर्थात् इस वेदान्तविद्या में लिखे साधनों का यथावत् अनुष्ठान होने से ब्रह्मज्ञान होने पर जानना कुछ बाकी नहीं रह जाता उस (ब्रह्मविद्याम्) ब्रह्मज्ञान के साधन उपाय रूप वेदान्तविद्या का (ज्येष्ठपुत्राय) सब पुत्रों में श्रेष्ठ शुद्धान्तःकरण योग्य अप्रमादी शिष्य को (प्राह) उपदेश किया ॥

भा०—इस वर्त्तमान ब्राह्मकल्प के आरम्भ में ब्रह्मा जी ने मूल अथर्ववेद का आशय लेकर मुण्डक नाम से प्रसिद्ध ब्रह्मविद्या का अपने मुख्य शिष्य अथर्वा ऋषि को पहिले उपदेश किया पीछे शिष्य प्रशिष्य की परम्परा से इस ब्रह्मविद्या का प्रचार आज तक चला आता है कल्प के प्रारम्भ से इस विद्या का मूल दिखाने से इस का उत्तम होना प्रकट किया है । इस मन्त्र में विश्व शब्द विशेषण वाचक है उस का विशेष्य पद जगत् इसलिये नहीं माना जा सकता कि ब्रह्मा जी भी कार्य जगत् के अन्तर्गत ही थे घटादि कार्य से कुलालादि कर्त्ता सदा भिन्न रहता है और ब्रह्मा जी को सृष्टि कर्त्ता मानने में वेद से भी विरोध आता है जैसे अथर्ववेद में लिखा है कि (उच्छिष्टाज्जज्ञिरे०) जो रचना से सदा पृथक् रहता है रचना में कभी नहीं आता उसी परमेश्वर उच्छिष्ट नामी से सूर्यादि सब जगत् उत्पन्न हुआ है इत्यादि अनेक प्रकार के कथन से स्पष्ट निश्चय होजाता है कि जिस से यह सब जगत् उत्पन्न होता है वह रचना में कदापि नहीं आता इसी से उस का उच्छिष्ट नाम हुआ है । ब्रह्मा जी स्वयं रचना में शरीरधारी हुए इसलिये वे सृष्टिकर्त्ता नहीं हो सकते । यदि कहीं ऐसा ही प्रतीत हो कि ब्रह्मा ही सृष्टिकर्त्ता हैं तो वहां परब्रह्म का ही ब्रह्मा नाम बुद्धिमानों को जानना चाहिये ॥१॥

अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् । स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥ २ ॥

अ०–(ब्रह्मा) चतुर्वेदवक्ता (याम्, ब्रह्मविद्याम्) (अथर्वणे) उक्तशिष्याय [अथर्वशब्दः प्रकारद्वयेन व्युत्पादयितव्यः सचैकार्थएव। एकोऽदन्तोऽपरो नान्तः । थर्वतिश्चरतिकर्मा (चरसंशये) तत्प्रतिषेधः संशयप्रतिषेद्धाऽथर्वाऽथर्वावा] (प्रवदेत) प्रोक्तवान् भूते लिङ् (ताम्,अथर्वा) (अङ्गिरे) अङ्गिर्नामकाय स्वशिष्याय (पुरा,उवाच) अन्यशिष्येभ्यः पूर्वमधिकारिणंमत्वोपदिष्टवान् (सः) अङ्गीः (भारद्वाजाय) भारद्वाजगोत्रिणे (सत्यवाहाय) एतन्नाम्ने शिष्याय (प्राह) उक्तवान् (भारद्वाजः) (परावराम्) परस्मादवरेण पश्चादुद्भूतेन प्राप्तां विद्याम् (अङ्गिरसे) एतन्नाम्ने ऋषये प्राह । एवं परम्परया प्रचरिता ॥

भा०–सर्वविद्यानां वेदमूलकत्वात्सर्वविद्यामूलं परमात्मा तस्मादेव सर्वा विद्याः सर्वं च जगदुत्पन्नम् । अनन्तरं गुरुशिष्यपरम्परया कल्पावधि न्यूनाधिकभावेन सर्वा विद्याः प्रवर्त्तन्ते॥

भाषार्थः–(ब्रह्मा) चारो वेद के वक्ता ब्रह्मा जी ने (याम्, ब्रह्मविद्याम्) जिस ब्रह्मविद्या का (अथर्वणे) उक्त शिष्य अथर्वा ऋषि के लिये (प्रवदेत) उपदेश किया (ताम्) उसी का (अथर्वा) अथर्वा ने (अङ्गिरे) अङ्गी नामक अपने शिष्य को (पुरा,उवाच) अन्य शिष्यों से पहिले उस को अधिकारी मान के उपदेश किया (सः) उस अङ्गी ने (भारद्वाजाय) भारद्वाजगोत्री (सत्यवाहाय) सत्यवाह नामी ऋषि को (प्राह) उपदेश किया और (परावराम्) पहिले २ पुरुषों से अगले २ को प्राप्त होती आई विद्या का

(भारद्वाजः) भारद्वाजगोत्री सत्यवाह ने (अङ्गिरसे) अङ्गिरा ऋषि को उपदेश किया। इसी प्रकार परम्परा से प्रचार होता आया॥

भा०—सब विद्याओं का मूल वेद और वेद का भी मूल परमेश्वर है उसी से सब विद्या तथा सब जगत् उत्पन्न हुआ है। इस के पीछे गुरु शिष्य की परम्परा से कल्पभर न्यूनाधिक भाव से सब विद्या प्रवृत्त रहती हैं। प्रलयानन्तर फिर भी उसी से चलती हैं उस का गुरु कोई नहीं वह गुरुओं का भी गुरु है॥ २॥

शौनको हवै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ। कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति॥ ३॥

अ०—अन्यः कश्चिच्छिष्यः प्राह (हवै) पुरातनकाले (महाशालः) महत्यः शाला गृहाणि प्रासादा यस्य स सर्वगृहाश्रमैश्वर्यसम्पन्नः (शौनकः) शुनकस्यापत्यम् (अङ्गिरसम्) सत्यवाहशिष्यं स्वस्याचार्यम् (विधिवत्) शास्त्रोक्तप्रकारेण (उपसन्नः) सान्निध्यं प्राप्तः (पप्रच्छ) पृष्टवान्। हे (भगवः) भगवन् विद्यैश्वर्यसम्पन्न तपोधन! (कस्मिन्) (विज्ञाते) इदम्, सर्वम्, विज्ञातम्) भवति। अर्थात् तत् किमस्ति यस्य विज्ञानेन पुनरन्यस्य ज्ञातुमपेक्षा निवर्त्तते॥

भावार्थः—अस्यामुपनिषदि शौनकर्षिकृत एक-

एवायं प्रश्नोऽस्यैव सर्वं व्याख्यानमुत्तररूपमेव विज्ञेयम् । तत्र च विज्ञानं विज्ञेयं सर्वंच किमस्तीति सर्वं पृष्टमेव विज्ञेयम् । साधनमन्तरेण विज्ञानमप्यसम्भवमिति साधनान्यपि वक्तव्यानि ॥ ३ ॥

भाषार्थः—अन्य कोई शिष्य कहता है—(ह,वै) पहिले समय में (महाशालः) बड़े २ ऊंचे अति सुन्दर घरों वाले गृहाश्रम के सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त (शौनकः) शुनक के पुत्र शौनक ऋषि ने सत्यवाह के शिष्य और अपने गुरु (अङ्गिरसम्) अङ्गिराऋषि के समीप (विधिवत्) शास्त्र की आज्ञा के अनुसार (उपसन्नः) जाकर (पप्रच्छ) पूछा कि हे (भगवः) विद्यारूप ऐश्वर्य से युक्त तप ही जिन का धन है (कस्मिन्, विज्ञाते) किस के जान लेने से (इदम्,सर्वम्) यह सब (विज्ञातम्) (भवति) जान लिया जाता है अर्थात् वह कौन वस्तु है ? कि जिस के जान लेने से फिर अन्य के जानने की अपेक्षा नहीं रहती ॥

भा०—इस उपनिषद् में शौनकऋषिकृत एक यही प्रश्न है इसी का उत्तर रूप व्याख्यान इस में है । उस में ज्ञान, जानने योग्य वस्तु और सब क्या है ? इत्यादि सभी का पूछना आजाता है और साधन के विना ज्ञान होना भी असम्भव है इसलिये साधन भी अवश्य कहने चाहिये ॥ ३ ॥

तस्मै सहोवाच द्वे विद्ये वेदितव्य इति हस्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ॥ ४ ॥

अन्वयः-इदानीं साधनमुपक्रमते-(सः) अङ्गिराः (तस्मै) शौनकाय (होवाच) तात ! त्वया (द्वे, विद्ये, वेदितव्ये) (इति) इत्येवं प्रकारेण (ह,-स्म) अतीतवृत्त स्मरणार्थौ निपातौ (यत्) विद्याद्वयम् (ब्रह्मविदः) वेदाशयज्ञा वेदपारगाः (वदन्ति) तयोर्नाम्नी (परा, च, एव अपरा, च) पराविद्या परमार्थसाधने मुख्यतयोपयुक्ता, अपरा संसारान्तर्गतधर्माधर्मादिविवेचने मुख्यतयोपयुक्ता ॥

भा०-जगति यावत्पदार्थजाते भेदद्वयं प्रत्येतव्यम्। परमपरं च तथैव ब्रह्मज्ञानसाधनेषु भेदद्वयमस्ति। तत्रपरम्परयाऽपरापि ब्रह्मज्ञानस्य साधनम्। साक्षात्तु परैव। पराविद्यायाश्च साक्षात्साधनमपरा विद्यास्ति। स्वस्वविषये द्वयोरपि प्राधान्यम्। नात्र परापरशब्दौ प्रधानाप्रधानवाचकौ स्तः ॥ ४ ॥

भावार्थः-अब ब्रह्मविद्या होने के साधनों के व्याख्यान का प्रारम्भ किया जाता है (सः) वे अङ्गिरा ऋषि (तस्मै) उन शौनक अपने शिष्य से (ह, उवाच) प्रकट बोले कि हे शिष्य तुम को (द्वे, विद्ये, वेदितव्ये) दो विद्या जानने चाहिये (इति) ऐसा विचार कर (ह, स्म) बहुत पुरातन काल से (यत) जिन दो विद्याओं को (ब्रह्मविदः) वेद का आशय यथावत् जानने वाले वेद के पारगन्ता विद्वान् लोग (वदन्ति) कहते आये हैं उन दोनों विद्या के

(परा,च,एव,अपरा,च) परा और अपरा नाम हैं परमार्थ के सिद्ध होने में मुख्य उपकार जिन से हो वह परा और संसारान्तर्गत धर्म अधर्म के विवेचन में मुख्य उपयोगिनी अपरा विद्या है ॥

भा०—जगत् में जितने पदार्थ हैं उन सब में दो भेद निश्चय करने चाहिये। उस में परम्परा से अपरा विद्या भी ब्रह्मज्ञान का साधन है परन्तु साक्षात्साधन परा ही है और परा विद्या का साक्षात्साधन अपरा विद्या है अपने २ विषय में दोनों की प्रधानता है किन्तु यहां पर अपर शब्द किसी की गौणता वा किसी की मुख्यता दिखाने के लिये नहीं है ॥ ४ ॥

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते॥५॥

अ०—(तत्र) तयोः परापरविद्ययोर्मध्ये (ऋग्वेदः, यजुर्वेदः,सामवेदः, अथर्ववेदः) इमे चत्वारोवेदाः, (शिक्षा,कल्पः,व्याकरणम्, निरुक्तम्,छन्दः, ज्योतिषम्) इमानिषडङ्गानि तत्र शिक्षाव्याकरणे पाणिनीये कल्पः पैङ्गीत्यादिविशेषणविशिष्टः। निरुक्तं यास्कमुनिप्रणीतं छन्दः पिङ्गलाचार्यकृतम्। ज्योतिषं सूर्यसिद्धान्तादिनाम्ना प्रसिद्धम्। उपलक्षणमेतदन्येषामार्षग्रन्थानाम् । तेन सर्वाणि पुस्तकान्यपरा विद्यास्थानि (अथ) (यया)विद्यया

(तत्, अक्षरम्) अविनाशि परोक्षं ब्रह्म (अधिगम्यते) प्राप्यते ज्ञायते च सा (परा) परमार्थसाधने मुख्यतयोपयुक्ता शमदमतितिक्षोपरतितपश्चरणयोगाङ्गानुष्ठानादिरूपा परा विद्यास्ति

भा०—सर्वविद्यामूलं वेदस्तस्मादेव व्याकरणनिरुक्तादिकं निस्सृतम् । सर्वविद्याविषयत्वाद्वेदस्य सर्वोपरिप्राधान्यं स्वस्वविषये चान्येषां व्याकरणादीनाम् । एवमुपनिषदां ब्रह्मज्ञानसाधनेषु प्राधान्यमायाति तानि साधनानि सूत्रभूतानि मूलवेदादुपादायोपनिषत्सु विस्तरेण वर्णितानि । नह्येतेन वेदादधिकं प्राधान्यमुपनिषदामुपपादनीयं ज्ञातव्यं वा वेदः पितृस्थान्यन्यानि पुस्तकानि च पुत्रस्थानीनि पुत्राच्च पितुः प्राधान्यं स्फुटमेव ॥ ५ ॥

भाषार्थः-(तत्र) उन दोनों परा अपरा विद्या के बीच (ऋग्वेदः, यजुर्वेदः, सामवेदः, अथर्ववेदः,) ऋग् यजुः साम अथर्व ये चार वेद (शिक्षा,कल्पः,) (व्याकरणम्, निरुक्तम्,छन्दः, ज्योतिषम्) शिक्षा और व्याकरण अष्टाध्यायी ये पाणिनि ऋषि कृत । कल्प पिङ्ग ऋषि कृत निरुक्त यास्क ऋषि का बनाया,छन्दः पिङ्गलाचार्य का बनाया, ज्योतिष सूर्यसिद्धान्तादि नाम से प्रसिद्ध ये वेद के छः अङ्ग इत्यादि सब अन्य भी ऋषि प्रणीत पुस्तक अपरा विद्या में हैं (अथ) और (यया) जिस विद्या से (तत,अक्षरम्) वह परोक्ष अविनाशी ब्रह्म (अधिगम्यते) प्राप्त होता वा जाना जाता है वह (परा) परमा-

र्थ को सिद्धि में मुख्य कर उपयोगिनी शम शान्ति चंचलता छूटना दम इन्द्रियों का वश में होना सहन शीलता वैराग्य, तप का सेवन और योग के यम नियमादि अङ्गों का अनुष्ठान रूप परा विद्या है॥

भा०—सब विद्याओं का मूल वेद है उसी से व्याकरण निरुक्तादि भी निकले हैं वेद में सब विद्याओं का विषय होने से वेद सब से मुख्य वा प्रधान है और व्याकरणादि अपने २ एक २ विषय में प्रधान हैं। उपनिषदों में ज्ञान के जो २ साधन कहे हैं उन का भी सूत्रमात्र मूल वेद से लेकर विस्तर से वर्णन किया गया है। इस से उपनिषदों की वेद से अधिक उत्तमता सिद्ध नहीं करनी चाहिये क्योंकि वेदपितृस्थानी तथा अन्य पुस्तक सब पुत्रस्थानी हैं पुत्र से अधिक प्रधानता जैसे पिता की मानी जाती है वैसे सब ग्रन्थों की उत्पत्ति के हेतु पितृस्थानी वेद की सब उपनिषदादि से अधिक प्रधानता माननी चाहिये ॥ ५ ॥

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥ ६ ॥

अ०—पराविद्याधिगम्यमक्षरमविनश्वरं ब्रह्म कीदृगित्युच्यते—(यत्तत्) यत्तच्छब्दाभ्यामेव वक्तुमर्हम्। नहि केनचिद्धस्तामलकवद्द्रष्टुं योग्यम् (अद्रेश्यम्) अतीन्द्रियं ज्ञानेन्द्रियैरग्राह्यम् (अग्राह्य) कर्मेन्द्रियैः प्राप्तुमशक्यम् (अगोत्रम्) पित्रादिवंशविहीनम् (अवर्णम्) श्वेत-

पीतकृष्णादिवर्णरहितम् (अचक्षःश्रोत्रम्) नास्ति चक्षुः श्रोत्रं च यस्य न चक्षुषा पश्यति न च श्रोत्रेण शृणोति यद्येवं स्यात्तर्हि तयोरभावेऽन्धो बधिरश्चापि भवेत् (तत्,अपाणिपादम्) उपलक्षणमेतदपि तेन कर्मेन्द्रियविवर्जितमिति निष्पन्नम् (नित्यम्) (विभुम्) विविधप्रकारेषु वस्तुषु भवति सत्तारूपेण तिष्ठति सर्वान् स्थापयति च (सर्वगतम्) परमाणुजीवात्मस्वपि व्याप्तम् (सुसूक्ष्मम्) अतिसूक्ष्मं नास्ति किमपि ततः सूक्ष्मम्। अतएव (तत्,अव्ययम्) नास्ति व्ययो ह्रासो यस्य तत् (यत्) (भूतयोनिम्) भूतानामुत्पन्नानां पदार्थमात्राणां योनिं कारणं तस्मादेव सर्वमुत्पद्यते। यथा पितरावन्तरेणापत्यं न जायते तथैव सर्वस्य सएव माता पिता चास्ति। एवंभूतं परं ब्रह्म (धीराः) ध्यानशीला विद्वांसः (परिपश्यन्ति) परितः प्रत्यगात्मदृष्ट्या ध्यानेनात्ममनःसंयोगमात्रेण साक्षात्कुर्वन्ति ॥

भा०—अपराविद्यास्थेषु सर्ववेदादिपुस्तकेषु कल्याणमार्गप्रधानस्य ब्रह्मज्ञानस्य साधनानि साङ्गोपाङ्गानि वर्णितानि तेषां शास्त्राणां ज्ञानं ब्रह्मचर्याद्याश्रमनियमानुष्ठानपुरस्सरं सम्पादयितुं

सुलभम् । तत्र च श्रोत्रेणविद्यानां श्रवणं नेत्रेण पुस्तकादिषु दर्शनं वाचा कथनं च कर्त्तव्यम् । एवमेतस्यामपराविद्यायां निष्पन्नायां तत्साहाय्येन धारणाध्यानसमाधिरूपां पराविद्यां विद्वानन्त्याश्रमे सेवेत । इत्येवं प्रकारेणादृश्यादिरूपं ब्रह्म साक्षाज्ज्ञातुं शक्यम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—पराविद्या से प्राप्त होने योग्य अविनाशी ब्रह्म कैसा है सो कहते हैं (यत्, तत्) जो वह इत्यादि प्रकार से ही जिस का वर्णन कर सकते हैं कोई हाथ में आमले के तुल्य प्रत्यक्ष ब्रह्म को नहीं देख सकता (अदृश्यम्) जो ज्ञानेन्द्रियों से नहीं जाना जाता (अग्राह्यम्) हाथ पांव आदि से पकड़ने में नहीं आता (अगोत्रम्) जिस का गोत्र अर्थात् कुल कोई नहीं (अवर्णम्) जिस में काला पीला श्वेत आदि रंग नहीं (अचक्षुःश्रोत्रम्) आंख कान जिस के नहीं जो न आंख से देखता न कान से सुनता है। यदि आंख आदि से देखता हो तो आंख कान के न रहने पर अन्धा और बहिरा भी होना चाहिये (तत्, अपाणिपादम्) वह हाथ पांव आदि कर्मेन्द्रियों से रहित है (नित्यम्) नित्य (विभुम्) सब प्रकार के पदार्थों में सत्तारूप से स्थित और सब को अपनी सत्ता से स्थित रखने वाला (सर्वगतम्) परमाणु और जीवात्मा में भी व्याप्त इसी से (सुसूक्ष्मम्) अतिसूक्ष्म जिस से परे कोई सूक्ष्म नहीं (तत्, अव्ययम्) वह अव्यय है जिस में कभी कुछ घटता नहीं (भूतयोनिम्) उत्पन्न हुए सब वस्तुओं का कारण है उसी से सब उत्पन्न होता है जैसे पिता के विना पुत्र नहीं होता वैसे वही सब के माता पिता का भी माता पिता है इस उक्त प्रकार के परमात्मा का (धीराः) ध्यानशील विद्वान् लोग (परिपश्यन्ति) भीतरी विचार वा ध्यान से आत्मा मन के संयोग से ही साक्षात् ज्ञान करते हैं ॥

भा०—अपरा विद्या के अन्तर्गत सब वेदादि के पुस्तकों में और कल्याण के मार्ग कहे हैं उन में मुख्य ब्रह्मज्ञान के साधन भी साङ्गोपाङ्ग वर्णन किये गये हैं उन शास्त्रों का ज्ञान ब्रह्मचर्यादि आश्रम के नियमों का अनुष्ठान पूर्वक सिद्ध होना सुलभ है। वहां कान से शास्त्रों का सुनना आंख से पुस्तकादि देखना और वाणी से कहना वा घोखना आदि प्रायः बाह्यक्रिया होने से अपरा विद्या है इस प्रकार अपरा विद्या की सिद्धि अर्थात् शास्त्रज्ञान होने पर उसी की सहायता से धारणा ध्यान और समाधिरूप परा विद्या का विद्वान् पुरुष चौथे संन्यासाश्रम में मुख्य कर सेवन करे इस प्रकार परा विद्या से अदृश्यादि रूप परमेश्वर का साक्षात् ज्ञान हो सकता है ॥ ६ ॥

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति। यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ॥ ७ ॥

अ०—पूर्वस्मिन् मन्त्रे भूतयोनिमित्युक्तम्। तस्येदं विशिष्टं व्याख्यानम्। किंभूतं जगतः कारणं ब्रह्मेत्युच्यते-(यथा) (ऊर्णनाभिः) ऊर्णा जालनिर्माणकारणं नाभौ यस्य स लूताकीटः (सृजते) जालतन्तून् स्वभावेनैव निर्मिमीते प्रसारयति (गृह्णतेच) स्वात्मनि कूर्माङ्गानीव संकोचयति (यथा) (पृथिव्याम्) आधाररूपायां

धरायां सत्यामेव स्वस्वबीजोपादानात् (ओषधयः) यवाद्याः (सम्भवन्ति) उत्पद्यन्ते (यथा) च (सतः) विद्यमानस्य जीवात्मनः (पुरुषात्) शरीरात्पूर्णाद्यौवनावस्थादेव (केशलोमानि) श्मश्रुशरपाद्यानि सम्भवन्ति। (तथा) सत एव (अक्षरात्) अविनाशिनः परब्रह्मणः (इह) संसारे (विश्वम्) वस्तुमात्रं स्वस्वकार्यधर्मेण भिन्नं (सम्भवति) उत्पद्यते ॥

भा०-ब्रह्मणउपादानकारणप्रतीकाराय दृष्टान्तत्रयम्। नहि दृष्टान्तत्रये चेतनं क्वापि जडस्योपादानं प्रतिपाद्यते किन्तु जडचेतनसंयोगादेव ज्ञानपूर्विका सृष्टिरिति प्रतिपादयितुं दृष्टान्ताः। यथोर्णनाभिस्थो जीवात्मा प्रकृतिरूपात्स्वशरीरस्थात्कारणाज्जडकार्यं तन्तुरूपं विस्तारयति नतु जीवात्मा तस्योपादानम्। यथौषध्यादिषु पृथिव्युपादानं कृषको निमित्तं यथा च केशादिषु शरीरमुपादानं जीवात्मा च निमित्तमस्ति सर्वत्रैव जडचेतनसंयोगात्सृष्टिरिति सिद्धान्तः। तथैवेहापि बोध्यम्। सर्गारम्भे परमात्मा जडप्रकृत्या संयुज्यते तस्माज्जडोपादानात्सर्वं कार्यं जगन्निर्मिमीते। ये चात्र चेतनब्रह्मोपादाना-

त्सृष्टिं मन्यन्ते तैर्दृष्टान्तेऽपि चेतनोपादानाज्जा-
लौषधिकेशादिकार्यं दर्शनीयम् । नोचेद् ब्रह्मैवा-
स्योपादानमिति विवादान्मौनैर्भवितव्यम् । स्प-
ष्टमत्र ब्रह्मोपादानवादिनः प्रत्युच्यन्ते ॥७॥

भाषार्थः—इस से पूर्व मन्त्र में परमेश्वर को सर्वजगत् का कारण कहा है उस का विशेष व्याख्यान इस मन्त्र से करते हैं कि जगत् का कारण ब्रह्म कैसा है:—(यथा) जैसे (ऊर्णनाभिः) जाला बनाने का उपादान कारण जिस के मध्य शरीर नाभि में हो ऐसा मकरी नामी कीड़ा (सृजते) जालरूप सूतों को स्वभाव से ही बनाता फैलाता है (च) और (गृह्णते) कछुआ के तुल्य अपने शरीर में फिर लय करलेता है। (यथा) जैसे (पृथिव्याम्) आधारूप पृथिवी के होने पर ही अपने २ उपादान कारण बीज से (ओषधयः) जौ आदि शाखारूप ओषधियां (सम्भवन्ति) उत्पन्न होती हैं। और (यथा) जैसे (सतः) विद्यमान जीवात्मा के (पुरुषात्) पूर्ण युवावस्था में स्थित शरीर से ही (केशलोमानि) दाढ़ी मूंछ और गुप्त केशलोमादि उत्पन्न होते हैं (तथा) वैसे ही विद्यमान (अक्षरात्) अविनाशी परब्रह्म के सत्तारूप होने से इस जगत् में (विश्वम्) अपने २ कार्य धर्म से भिन्न सब वस्तु मात्र (सम्भवति) उत्पन्न होता है॥

भा०—इस मन्त्र में जगत् का उपादान कारण ब्रह्म नहीं इस बात की सिद्धि के लिये तीन दृष्टान्त हैं क्योंकि इन तीनों दृष्टान्त में से किसी में जड़ का उपादान चेतन नहीं कहा गया। किन्तु जड चेतन के संयोग से ही ज्ञानपूर्वक सृष्टि होती है इस बात का प्रतिपादन करने के लिये दृष्टान्त दिये गये हैं। जैसे मकरी के शरीर में रहने वाला जीवात्मा प्रकृतिरूप अपनेशरीरस्थ कारण

से तन्तु सूत्र जालारूप जड़ कार्य का विस्तार करताहै किन्तु जीवात्मा स्वयं जालारूप नहीं बन जाता। ओषधि आदि पृथिवी के विकारों में बीज और पृथिवी उपादान और किसान निमित्त कारण है। तथा केशादि के निकलने में शरीर उपादान और जीवात्मा निमित्त कारण है। सर्वत्र ही जड़ चेतन के संयोग से ज्ञानपूर्वक सृष्टि होती है यही सिद्धान्त है वैसे ही यहां भी जानना चाहिये सृष्टि के आरम्भ में परमेश्वर जड़ प्रकृति के साथ संयुक्त होता है उसी जड़ उपादान से सब जड़ कार्य को रचता है। और जो इस वेदान्तशास्त्र में ब्रह्मरूप उपादान से सृष्टि मानते हैं उन को उचित है कि दृष्टान्त में भी जाला ओषधि और केशादि कार्यों को चेतन उपादान से उत्पन्न हुए दिखावें और ऐसा न कर सकें तो वे लोग भी ब्रह्म ही जगत् का उपादान कारण है ऐसे कहने से मौन हों। क्योंकि यहां ब्रह्म को उपादान कहने वालों के मत का खण्डन स्पष्ट निकलता है॥ ७॥

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते। अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम्॥ ८॥

तपसा। चीयते। ब्रह्म। ततः। अन्नम्। अभिजायते। अन्नात्। प्राणः। मनः। सत्यम्। लोकाः। कर्मसु। च। अमृतम्॥८॥

अ०—इदानीं सृष्टेरुत्पत्तिप्रकारं वक्तुमारभते—(तपसा) ज्ञानेनेक्षणेन रचनप्रकारपर्यालोचनेन [यस्य ज्ञानमयं तपइति वक्ष्यमाणप्रामाण्यात्तपःशब्देन ज्ञानमुच्यते] (ब्रह्म) आत्मस्वरूपम् (ची-

यते) वृद्धं भवति [तेनैव तस्य ब्रह्मेति नाम जायते। ज्ञानेन विकारित्वं तस्योपपाद्यतेऽपितु ज्ञानेन सम्यगीक्षणपूर्विका सृष्टिरिति प्रतिपाद्यते] (ततः) तस्मादीक्षणकर्त्तुः परमात्मनईक्षणात् (अन्नम्) अद्यते सामान्येन सर्वप्राणिभिस्तदव्यक्तमाकाशस्तमोनुदः प्रकाशो वा (अभिजायते) प्रकटीभवति [तस्यैव तैत्तिरीयोपनिषदि-तस्मादेतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतइत्याकाशत्वेन वर्णनम् । प्रादुरासीत्तमोनुदइति च मनुस्मृतौ। अव्यक्ताकाशमन्तरेण कश्चिदपि प्राणी जीवितुमशक्तइति मत्वा तस्यान्नत्वमुच्यते] तस्मात् (अन्नात्) अव्यक्तात् (प्राणः) महत्तत्त्वमप्संज्ञकमुपजायते प्रकटं भवति [प्रकृतेर्महानिति सांख्ये । अपएव ससर्जादाविति मनुस्मृतौ चास्यैव वर्णनम्] तदनन्तरम् (मनः) अन्तःकरणरूपमुत्पद्यते [एतस्यैव महतोऽहङ्कारइति सांख्ये वर्णनम् । मनोबुद्धिचित्ताहङ्कारशब्दैरन्तःकरणमेव यथाशास्त्रमुच्यते] तदनन्तरम् [सत्यम्] सति विद्यमाने साधु [प्रकृतिरूपत्वान्नित्यं विद्यमानं पञ्चतन्मात्रं सूक्ष्मभूतपञ्चकम् । तथा च सांख्यवादिभिरष्टौ प्रकृतयः षोडशविकारा स्वीकृताः । तत्र प्रकृतिर्महानहङ्कारः

पञ्चतन्मात्राणीत्यष्टौ प्रकृतयः। तेषां स्वरूपेण सदा विद्यमानत्वात् प्रकृतित्वम्। उत्पत्तिकथनं प्रादुर्भावमात्रं नतु तेषु कश्चिद्विकारी भवति दुग्धाद्दधिवत्] ततः सर्वे (लोकाः) पृथिव्यादयः स्थूला दृष्टिपथगताः प्राणिनिकायाश्चोत्पद्यन्ते तेषु मनुष्यादिप्राणिषु सत्स्वेव कर्माणि वर्णाश्रमभेदविधायकानि संजातानि। तेषु (कर्मसु) निमित्तभूतेषु सत्सु (अमृतम्) कर्मफलं कल्पितं भवति [कर्माणि प्रवाहेण नित्यानीति तेषां फलमपि सदा विद्यतइत्यमृतत्वमुच्यते] ॥

भा०—ब्राह्मकल्पारम्भे प्रलयानन्तरमादौ प्रकाश उत्पद्यते तस्यैवाकाशइत्यपि नाम जायते तस्मिन्नेव सर्वे प्राणिनः स्थितिकाले प्राणन्ति। तदुत्पत्तेः पूर्वं ब्रह्म, ज्ञानेन रचनप्रकारकालोचनेन संयुज्यते। तदेव मनुस्मृतावप्युक्तम्। ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्। महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः। ज्ञानप्रकाशावन्तरेण किमपि कार्यं भवितुमशक्यम्। अस्मिन् मन्त्रे सत्यपर्यन्ताः प्रकृतयः प्रदिपादिताः। नतु तेषां दुग्धाद्दधिवद्विकारभावो विवक्षितः किन्तु तेषामाविर्भावे पूर्वं पूर्वं कारणं परंपरं प्रकृतिरूपमेव कार्यम्। नहि घटस्य मृ-

त्स्नैव सर्वस्य कारणमपितु यस्मिन्सति यस्य भावो यस्मिन्नसति यस्याभावइति कारणस्य सामान्यं लक्षणम् । तच्च न क्वापि व्यभिचरति । नहि साधर्म्येण पृथिव्या उपादानमापो भवितुमर्हन्ति किन्तु सत्सूदकेषु पृथिव्याः स्थितिर्नासत्सु तद्वदिहापि ब्रह्मादीनामुत्तरोत्तरस्य कारणमिति विद्वद्भिरनुसन्धेयम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः–अब सृष्टि की उत्पत्ति का प्रकार कहने का प्रारम्भ करते हैं (तपसा) रचना का प्रकार जानने से [अगले नवएं मन्त्र में कहा है कि जिस का तप ज्ञान स्वरूप ही है इस लिये यहां तप शब्द से ज्ञान लिया है] (ब्रह्म) परमात्मा (चीयते) सदा सब से बड़ा माना जाता है इसी लिये उस का ब्रह्म नाम है [इस से परमेश्वर का बढ़ना घटना नहीं कहा किन्तु ज्ञान से सम्यक् विचारपूर्वक सृष्टि कहने में तात्पर्य है] (ततः) उस ईक्षण कर्त्ता परमात्मा के विचार करने पश्चात् (अन्नम्) सब प्राणियों की स्थिति का हेतु जो श्वास द्वारा प्रतिक्षण खाया जाता है वह अन्धकार नाशक प्रकाश वा आकाश प्रकट हुआ [उसी का तैत्तिरीयोपनिषद् में–उस परमात्मा से आकाश हुआ इस प्रकार आकाश नाम से वर्णन है और प्रलय के पश्चात् अन्धकार नाशक प्रकट हुआ यह मनुस्मृति में कहा है । अव्यक्तरूप आकाश के विना कोई भी प्राणी जी नहीं सकता ऐसा मानकर उस को अन्न कहा गया है] उस (अन्नात्) अव्यक्तरूप अन्न से (प्राणः) महत्तत्त्व अप् नामक प्रकट हुआ [प्रकृति से महान् हुआ ऐसा सांख्य में और प्रारम्भ में अप् नामक को प्रकट किया यह मनु० में कहा है] तिस पीछे (मनः) अन्तःकरणरूप प्रकट हुआ [इसी का महान् से अहङ्कार हुआ इस प्रकार सांख्य में वर्णन है । मन बुद्धि चित्त अहङ्कार शब्दों से भिन्न२ शास्त्रों में एक अन्तःकरण ही कहा गया

है] तिस पीछे (सत्यम्) विद्यमान रहने वाले पदार्थों में उत्तम [प्रकृति के अन्तर्गत] होने से नित्य विद्यमान पांच सूक्ष्मभूत [अर्थात् सांख्य वादी लोगों ने आठ प्रकृति और सोलह विकार माने हैं। उन में प्रकृति, महान्, अहङ्कार, और पांच सूक्ष्मभूत ये आठ प्रकृति हैं वे स्वरूप से सदा विद्यमान रहते हैं इस से प्रकृति माने जाते हैं। और उत्पत्ति कहना प्रकटता दिखाने मात्र के लिये है किन्तु दूध से दही के तुल्य उन में कोई विकारी नहीं होता] तिस पीछे सब (लोकाः) पृथिव्यादि स्थूल दृष्टि में आने वाले लोक लोकान्तर और प्राणियों के शरीर उत्पन्न हुए उन मनुष्यादि प्राणियों के होते ही वर्णाश्रम भेद के सिद्ध करने वाले कर्म हुए (कर्मसु) कर्मों के होने पर (अमृतम्) कर्म का फल हुआ [कर्म प्रवाह से नित्य हैं इसी से उन के फल भी प्रवाह से सदा विद्यमान रहते हैं इस लिये फल को अमृत कहा है]॥

भा०-ब्राह्म कल्प के प्रारम्भ में और प्रलय की समाप्ति में प्रथम प्रकाश उत्पन्न होता है वह प्रकाश भौतिक नहीं किन्तु परमेश्वर की ओर से होता है उसी की आकाश संज्ञा इस लिये मानी जाती है कि (काशृदीप्तौ) धातु से आकाश शब्द प्रकाश अर्थ का वाचक बनता है उसी आकाश में सब प्राणी सृष्टि की वर्त्तमान दशा में श्वास लेते हैं जिस से सब का जीवन रहता है इस प्रकार जीवन का हेतु मानकर आकाश को अन्न कहा गया। उस की प्रकटता से पूर्व रचने के प्रकार का विचार करना रूप ज्ञान से ब्रह्म संयुक्त होता है यही बात मनुस्मृति में भी कही है कि प्रलय के पश्चात् स्वयमेव अन्धकार का नाशक प्रकाश परमात्मा की सत्ता से प्रकट हुआ। क्योंकि पहिले ज्ञान और प्रकाश न हों तो कोई कार्य जगत् का चल नहीं सकता। इस मन्त्र में सत्य शब्द तक प्रकृतियां कहीं किन्तु उन का दूध से दही के तुल्य विकार नहीं होता अर्थात् उन प्रकृतियों की प्रकटता में पूर्व २ कारण और उ० २ प्रकृतिरूप ही कार्य है। कारण शब्द का भी यह अर्थ

नहीं है कि जैसे घड़े का कारण मट्टी है वैसे ही सब का कारण माना जावे किन्तु जिस के होने से जो वस्तु हो तथा जिस के न रहने से जो न रहे वह भी कारण है यह कारण का सामान्य लक्षण है यह कहीं व्यभिचारी नहीं होता। अर्थात् पृथिवी का उपादान कारण जल कदापि नहीं हो सकते किन्तु जलों की विद्यमानता में ही पृथिवी ठहर सकती है न होने पर नहीं वैसे यहां भी जानो ब्रह्म आदि में उत्तर २ का पूर्व २ कारण है सो विद्वानों को इस का अनुसन्धान करना चाहिये ॥ ८ ॥

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः। तस्मादेतद् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते ॥ ९ ॥

प०–यः। सर्वज्ञः। सर्ववित्। यस्य। ज्ञानमयम्। तपः। तस्मात्। एतत्। ब्रह्म। नाम। रूपम्। अन्नम्। च। जायते॥९॥

अ०–(यः) परमात्मा पराविद्यया योगिभिः साक्षात् क्रियते (सर्वज्ञः) सर्वं याथार्थ्येन जानाति न किमपि यस्य ज्ञातुमवशिष्यते (सर्ववित्) सर्वं वस्तुमात्रं कार्यकारणद्वयमपि विन्दत्याप्नोति यद्वा सर्वस्मिन्स्वसत्तया विद्यते यद्वा सर्गारम्भे सर्वं रचनप्रकारं विन्तआलोचयतीति सर्ववित् [नात्र वेत्तेः क्विप् कर्त्तुं युक्तः। तदर्थस्य सर्वज्ञशब्देनोक्तत्वात्। शङ्करस्वामिना च वेत्तेः क्विब् विहितस्तत्समीचीनं न प्रतिभाति सर्वशब्देन

सामान्यविशेषयोरुभयोरपि ज्ञानसम्भवात्] (यस्य) (ज्ञानमयम्) ज्ञानस्वरूपम् (तपः) प्रतापः प्रकाशो वास्ति (तस्मात्) निराकारान्निर्विकारान्निर्विकल्पान्निरामयाच्छुद्धाच्छान्तात्सनातनात् (ब्रह्म) वेदस्तस्मिन् (नाम) पृथिव्यादीनां संज्ञा तेषां च (रूपम्) स्थूलरूपं कार्यं तस्यां पृथिव्याम् (अन्नम्) ओषधिफलम् (च) अपि (जायते) उत्पद्यते ॥

भा०-पूर्वमन्त्रे यः सृष्टेः क्रम उक्तस्तेनैव क्रमेण रूपमन्नं चोत्पन्नम्। कार्यसृष्टेः प्राक् वेदे सर्वकार्यवस्तूनां नामान्यासंस्तदनुकूलान्येव सर्ववस्तून्युत्पन्नानीत्यनेन सूच्यते ॥ ९ ॥

भाषार्थः-(यः) जो परमात्मा परा विद्या द्वारा योगी लोगों से प्रत्यक्ष होता (सर्वज्ञः) सब को यथार्थ रूप से जानता है जिस के जानने को कुछ बाकी नहीं रह जाता (सर्ववित्) सब कार्य कारणरूप वस्तुमात्र को प्राप्त होता अथवा अपनी सत्तासे सब में विद्यमान अथवा सृष्टि के आरम्भ में सब रचना के प्रकार को विचारता है [यहां स्वामी शङ्कराचार्य जी ने ज्ञानार्थ विद्धातु से क्विप् प्रत्यय किया है सो ठीक नहीं प्रतीत होता क्योंकि वह अर्थ सर्वज्ञ शब्द से आगया तथा सब शब्द से सामान्य विशेष दोनों प्रकार का जानना भी आ सकता है] (यस्य) जिस का (ज्ञानमयम्) ज्ञान स्वरूप ही (तपः) प्रताप वा प्रकाश है (तस्मात्) उस निराकार निर्विकार निर्विकल्प निरामय शुद्ध सनातन परमात्मा

से (ब्रह्म) वेद प्रकट हुआ उस वेद में (नाम) पृथिव्यादि वस्तुओं के नाम (रूपम्) पीछे स्थूलरूप कार्य वस्तु और उस पृथिव्यादि स्थूलरूप में (अन्नम्) ओषधियों का फल अन्न (च) भी (जायते) प्रकट हुआ ॥

भा०—पूर्व मन्त्र में जो सृष्टि का क्रम कहा है उसी क्रम से रूप और अन्न की उत्पत्ति हुई। कार्य सृष्टि से पहिले ही सब कार्य वस्तुओं के नाम वेद में थे उन्हीं नामों के अनुसार सब वस्तु उत्पन्न हुए यह इस मन्त्र से सूचित होता है ॥९॥

इति प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः समाप्तः ॥

तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि। तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः स्वकृतस्य लोके ॥१॥

पदानि—तत्। एतत्। सत्यम्। मन्त्रेषु। कर्माणि। कवयः। यानि। अपश्यन्। तानि। त्रेतायाम्। बहुधा। सन्ततानि। तानि। आचरथ। नियतम्। सत्यकामाः!। एषः। वः। पन्थाः। स्वकृतस्य। लोके ॥ १ ॥

अ०—अथ द्वितीयखण्डेऽन्तःकरणशुद्धेः परमं कारणमुपदिश्यतेः—हे (सत्यकामाः) सत्यो मनसः सङ्कल्परूपः कामो येषां तत्संबुद्धौ ब्रह्मजिज्ञासवो दुःखान्मुमुक्षवो जनाः (यानि) (कर्माणि) सत्य-

भाषणादीन्यग्निहोत्रादीनि च (कवयः) क्रान्तद-
र्शना वेदाशयज्ञानेऽव्याहतबुद्धयो विद्वांसः ऋ-
षयः (मन्त्रेषु) ऋग्वेदादिषु (अपश्यन्) ज्ञानच-
क्षुषा दृष्टवन्त इदमित्थं कर्त्तव्यमिति (तानि)
कर्माणि (त्रेतायाम्) त्रयीविद्यायां त्रिषु वेदेषु
(बहुधा) बहुप्रकारैः (सन्ततानि) विस्तृतानि
(तानि) यूयम् (नियतम्) निश्चयेन (आचरथ)
(तदेतत्सत्यम्) ईश्वराज्ञानुष्ठानरूपत्वादेतत्सत्यं
वैदिककर्मानुष्ठाने न किमपि मिथ्यात्वफलं भ-
वितुमर्हति सत्यमेव तस्य फलं भवति । अतएव
(वः) युष्माकम् (स्वकृतस्य) स्वपुरुषार्थेन नि-
ष्पादितस्य कर्मणः (एषः) सुखभोगफलरूपः
(पन्थाः) मार्गः (लोके) दृष्टिपथगते जगत्यस्ति ॥

भा०-मनुष्येणान्तःकरणशुद्धये वेदोक्तेश्वराज्ञा-
रूपस्य सत्यभाषणाग्निहोत्रादिकर्मणो यथावद-
नुष्ठानं कर्त्तव्यं तेनान्तःकरणशुद्धौ सत्यां दर्पणे
रूपमिव ब्रह्मणो ज्ञानं सुलभं भवति । नहि
वैदिककर्मसेवी कश्चिद्दुर्गतिं प्राप्तुमर्हति ॥ १ ॥

भाषार्थः-अब द्वितीय खण्ड में अन्तःकरण की शुद्धि के मुख्य
उत्तम कारण का उपदेश किया जाता है-हे (सत्यकामाः) सत्य
संकल्प अर्थात् सर्वोत्तम ब्रह्मज्ञान की कामना रखने वाले जिज्ञासु

वा दुःख से छूटने की इच्छा वाले जनो (यानि) जिन (कर्माणि) सत्यभाषणादि वा अग्निहोत्रादि कर्मों को (कवयः) वेद के तात्पर्य जानने में जिन की बुद्धि रुकती नहीं अर्थात बराबर चलती है वे ऋषि विद्वान् लोग (मन्त्रेषु) ऋग्वेदादि वेद के मन्त्रों में (अपश्यन्) ज्ञानदृष्टि से देखते आये हैं कि यह कर्म इस प्रकार करना चाहिये (तानि) वे कर्म (त्रेतायाम्) त्रयीविद्यारूप तीनों वेदों तथा उन २ के ब्राह्मणों में (बहुधा) बहुत प्रकारों से (सन्ततानि) विस्तृत हैं (तानि) उन का तुम लोग (नियतम्) निश्चय से (आचरथ) आचरण वा सेवन करो (तदेतत्, सत्यम्) ईश्वर की आज्ञारूप होने से यही सत्य है क्योंकि वैदिक कर्म के सेवन से कुछ मिथ्या फल नहीं हो सकता किन्तु उन का फल सत्य ही है। इसी से (वः) तुम्हारे (स्वकृतस्य) पुरुषार्थ से सिद्ध हुए कर्मका (एषः) यह सुख भोग फलरूप (पन्थाः) मार्ग (लोके) प्रत्यक्ष संसार में है ॥

भा०—मनुष्य को योग्य है कि अपने अन्तःकरण की शुद्धि के लिये वेदोक्त ईश्वर की आज्ञारूप सत्यभाषणादि वा अग्निहोत्रादि कर्म का यथावत् सेवन करे। तिस से अन्तःकरण की शुद्धि होने पर दर्पण में रूप दीख पड़ने के तुल्य परमेश्वर का ज्ञान सुगम होजाता है क्योंकि वैदिक कर्म का सेवन करने वाला कोई दुर्गति वा दुर्दशा को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ १ ॥

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने। तदाज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेच्छ्रद्धया हुतम् ॥ २ ॥

प०—यदा। लेलायते। हि। अर्चिः। समिद्धे। हव्यवाहने। तदा। आज्यभागौ। अन्तरेण। आहुतीः। प्रतिपादयेत्। श्रद्धया। हुतम् ॥ २ ॥

अ०—अग्निहोत्रादिर्विधियज्ञः कथमनुष्ठेय

इत्यभिधीयते-(यदा) (हव्यवाहने,समिद्धे) हव्यं घृतादिकं वायौ सूर्यरश्मिषु च वोढुं प्रसारयितुं शीले वह्नौ (हि) निश्चयेन (अर्चिः) ज्वाला (लेलायते) उत्तिष्ठते सम्यक् प्रज्वलति (तदा) तस्मिन् काले (आज्यभागौ) (अन्तरेण) आज्यभागाहुतिद्वयानन्तरम्। अन्तरान्तरेण युक्त-इतिद्वितीया। (श्रद्धया)(हुतम्) हवनं यथा स्या-त्तथा (आहुतीः) (प्रतिपादयेत्) प्रक्षिपेत्। श्रद्धया हुतमित्युपलक्षणं विधिवत्कर्त्तव्यतायाः॥

भा०-अग्नये सोमायचेति द्वे आहुती सर्वेषु श्रौतस्मा-र्त्तहोमयज्ञेष्वाज्यभागनामिके प्रधानयागात्पूर्वं विधीयेते। तयोः प्रथमा कुण्डस्योत्तरपूर्वार्द्धे प्रज्व-लितेऽग्नौ द्वितीया च दक्षिणपूर्वार्द्धे प्रक्षेप्या। तयोर्मध्येऽन्याः प्रज्वलितेऽग्नौ प्रक्षेप्याः। अप्र-ज्वलितेऽग्नावाहुतयो न देयाः। अशुचिनाऽश्र-द्धयाऽविधिना च होमो न कार्यः किन्तु-

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेतिमनः समाधाय स सात्त्विकः॥

इति भगवद्गीतासूक्तप्रकारेण विदुषा सा-त्त्विको यज्ञोऽनुष्ठातव्यः। तत्र च श्रद्धया वेदमन्त्र-पाठेन परमात्मनो गुणानुवादः शुभस्य प्रार्थना च कार्या येनान्तःकरणशुद्धिर्मध्यमन्त्रानुष्ठानेन

मेधाप्राप्तिश्च स्यात् । तेनात्मदर्शनयोग्यतापि सुलभा भवतीत्याशयः ॥ २ ॥

भाषार्थः—अब अग्निहोत्रादि विधि यज्ञ का सेवन किस प्रकार करना चाहिये सो कहा जाता है (यदा) जब (हव्यवाहने) होमने योग्य घृतादि पदार्थ को वायु मण्डल वा सूर्य की किरणों में पहुंचाने वाला अग्नि (समिद्धे) अच्छे प्रकार जलने लगे और (हि) निश्चय कर अग्नि की (अर्चिः) ज्वाला लपट (लेलायते) उठने लगे (तदा) तब (आज्यभागौ) आज्यभाग नामक दो आहुतियों के (अन्तरेण) पश्चात् (श्रद्धया) श्रद्धा से (हुतम्) होम जैसे हो वैसे (आहुतीः) अग्नि में आहुतियों को (प्रतिपादयेत्) छोड़े । श्रद्धा पूर्वक होम हो इस के कहने का तात्पर्य यह है कि विधिपूर्वक होम करे ॥

भा०--अग्नि और सोम के लिये दो आज्यभाग नामक आहुति सब श्रौतस्मार्त्त होम यज्ञों के आरम्भ में प्रधान याग से पूर्व देनी चाहिये ऐसा विधान शास्त्रों में किया है उन में से पहिली कुण्ड के उत्तर पूर्वार्द्धस्थ प्रज्वलित अग्नि में और दूसरी कुण्ड के दक्षिण पूर्वार्द्ध में छोड़नी चाहिये और उन दोनों के बीच में प्रज्वलित अग्नि पर उस २ कर्म में विधान की हुई अन्य आहुति छोड़नी चाहिये । अप्रज्वलित अग्नि में आहुति न देना चाहिये । मनुष्य को उचित है कि अपवित्र हुआ श्रद्धा रहित विधान से विरुद्ध होम न करे किन्तु—फल की काङ्क्षा छोड़ कर शास्त्र में लिखे अनुसार यज्ञ करना हमारा काम है ऐसा मन में निश्चय करके किया यज्ञ सत्वगुण सम्बन्धी कहाता है इस प्रकार भगवद्गीता में कही रीति से विद्वान् को सात्त्विक यज्ञ करना चाहिये । उस यज्ञ में श्रद्धा पूर्वक वेद मन्त्रों के पाठ से परमात्मा का गुणानुवाद और शुभ फल प्राप्ति की प्रार्थना करनी चाहिये । जिस से अन्तःकरण की शुद्धि और पवित्र मन्त्रों के अनु-

ज्ञान से बुद्धि की प्राप्ति हो उस से आत्मज्ञान की योग्यता सुगमता से हो सकती है यह तात्पर्य है ॥ २ ॥

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितं च। अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतमासप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति ॥३॥

प०—यस्य । अग्निहोत्रम् । अदर्शम् । अपौर्णमासम् । अचातुर्मास्यम् । अनाग्रयणम् । अतिथिवर्जितम् । च । अहुतम् । अवैश्वदेवम् । अविधिना । हुतम् । आसप्तमान् । तस्य । लोकान् । हिनस्ति ॥ ३ ॥

अ०—शास्त्रविधिमुत्सृज्य स्वेच्छया कृतस्याग्निहोत्रादिकर्मणो न सम्यगभीष्ट फलं भवतीत्युच्यते (यस्य) यज्ञकर्मानुष्ठाने प्रवृत्तस्य यजमानस्य (अदर्शम्) दर्शेष्टिरहितम् (अपौर्णमासम्) पौर्णमासेष्टिवर्जितम् (अचातुर्मास्यम्) चातुर्मास्येष्टिविहीनम् (अनाग्रयणम्) नवान्नेष्टिवर्जितम् (च, अतिथिवर्जितम्) अतिथिपूजैको महायज्ञो यस्य नित्यकृत्येषु प्रतिदिनं नानुष्ठीयते (अहुतम्) काले योऽग्निहोत्रादिकं न करोति (अवैश्वदेवम्) वैश्वदेवो महायज्ञो येन नानुष्ठीयते (अविधिना, हुतम्) विधिरहितेन घृणितनिन्दितप्रकारेणाविश्वासपूर्वकं हुतं सद्वासनारूपेण स्थितं सञ्चितं कर्म (तस्य) यजमानस्य

(आसप्तमान्) सप्तमपर्यन्तान् (लोकान्) लोक्यते दृश्यते साक्षात् क्रियते ब्रह्म यैस्तान् श्रवणमनननिदिध्यासनशमदमतितिक्षोपरत्याख्यान् (हिनस्ति) कार्यसाधनेऽसमर्थान्निर्बलान् करोति । नहि तस्य साधनान्युपयुज्यन्ते ॥

भा०—अमावास्यायां पौर्णमास्यां वर्षासु शरद्दतौ च यदा यदा येन येन प्रकारेण यैर्यैर्वस्तुविशेषैर्यज्ञा विधीयन्ते तथा तथा विधियज्ञानुष्ठाने प्रवृत्तेन यजमानेन श्रद्धया विश्वासेन कर्त्तव्याः । मांसेनापि कुत्रचिद्यज्ञा विधीयन्ते तथापि कर्त्तव्यमिति न शङ्कनीयम् । हिंसायुक्तं कर्म तामसमिति भगवता श्रीकृष्णेनाप्युक्तम्—अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् । मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥१॥ तेन प्रतीयते तामसयज्ञानुष्ठानं राक्षसानां कर्मास्ति तत्कल्याणेप्सुना विदुषा नैव कार्यम् । यश्च यजमानः पञ्चमहायज्ञान् विहाय दर्शेष्ट्यादिरहितमग्निहोत्रादिकमतीतकालं भ्रष्टघृणितप्रकारेणाश्रद्धयाऽविश्वासेन दम्भार्थमेव करोति न तस्यान्तःकरणशुद्धिद्वारा ब्रह्मज्ञानस्योपकारकमग्निहोत्रादिकं

भवति । भगवद्गीतासु चोक्तम् "अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् । इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् । श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते" ॥ तस्माद्विपश्चिता फलाकाङ्क्षां विहाय सात्विको यज्ञः सेवनीयो न तु राजसतामसाविति भावः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—शास्त्र में लिखे विधान को छोड़ कर अपनी इच्छा से किये अग्निहोत्रादि कर्मका अभीष्ट अच्छा फल नहीं होता सो कहते हैं (यस्य) जिस यज्ञ कर्म के अनुष्ठान में प्रवृत्त हुए यजमान का (अदर्शम्) दर्शेष्टि [जो अमावास्या और प्रतिपदा की सन्धि में करनी चाहिये]से रहित (अपौर्णमासम्) पौर्णमासेष्टि यज्ञ [जो पूर्णमासी वा प्रतिपदा के दिन किया जाता है] से वर्जित (अचातुर्मास्यम्) चातुर्मास्येष्टियों [वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेध और शुनासीरीय ये चार पर्व फाल्गुनी पौर्णमासी से लेकर होने वाले चातुर्मास्य कहाते हैं] से रहित (अनाग्रयणम्) शरद् वसन्तऋतुओं में होने वाली नवान्नेष्टियों से वर्जित (च) और (अतिथिवर्जितम्) धर्मशास्त्रों में लिखेप्रकार अतिथि अभ्यागत पुरुष का जिस अग्निहोत्री के घर में पूजन सत्कार नहीं (अहुतम्) ठीक समय पर जिस का अग्निहोत्र नहीं होता (अवैश्वदेवम्) वैश्वदेव नामक महायज्ञ जिन अग्निहोत्र के साथ नहीं होता (अविधिना, हुतम्) और विधि रहित निन्दित प्रकार से अविश्वास पूर्वक किया गया होम वही वासनारूप से संचित्त कर्म बनकर (तस्य) उस अग्नि-

होत्री यजमान के (आसप्तमान्) सातवें पर्यन्त (लोकान्) ब्रह्मज्ञान के साक्षात् होने के हेतु श्रवण, मनन, निदिध्यासन, शम, दम, तितिक्षा और उपरति—वैराग्य नामक सातो लोकों को (हिनस्ति) कार्य सिद्ध करने में असमर्थ निर्बल करता है। अर्थात् श्रवणादि साधन उस के उपयोगी नहीं होते॥

भा०—अमावास्या पौर्णमासी वर्षा और शरदृऋतु में जब २ जिस २ प्रकार से जिन २ वस्तुओं से यज्ञों का विधान किया गया है उसी २ प्रकार विधियज्ञ के अनुष्ठान में प्रवृत्त यजमान पुरुष को श्रद्धा और विश्वास के साथ यज्ञ करने चाहिये। कोई कहे कि मांस से भी कहीं यज्ञों का विधान है तो क्या वह भी करना चाहिये? ऐसी शङ्का ठीक नहीं क्योंकि हिंसायुक्त कर्म तमोगुणी है यह भगवान् श्रीकृष्ण जी ने भी भगवद्गीता में कहा है कि मुख्य अपने अनुकूल, अपनी हानि, किसी जीव की हिंसा और परिश्रम की चिन्ता न कर के अज्ञान से आरम्भ किया कर्म तमोगुणी कहाता है। इस से प्रतीत होता है कि तामस यज्ञ करना राक्षसों का कर्म है ऐसा काम कल्याण को चाहने वाले विद्वान् को नहीं करना चाहिये। जो यजमान पंचमहायज्ञों को छोड़ कर दर्शेष्टि आदि रहित अग्निहोत्रादि यज्ञ को काल बिता के निन्दित प्रकार श्रद्धा और विश्वास रहित दम्भ दिखाने मात्र के लिये करता है उस का अग्निहोत्रादि यज्ञ अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा ब्रह्मज्ञान का उपकारी नहीं होता। भगवद्गीता में भी कहा है कि—हे अर्जुन फल पर आरूढ़ होकर दम्भार्थ भी जो यज्ञ किया जाता है वह राजस रजोगुण सम्बन्धी है और विधान से विरुद्ध विना शोधे बनाये हविष्य से किया जिस में मन्त्र पाठ और दक्षिणा नहीं दी और श्रद्धा रहित यज्ञ तामस कहाता है इस लिये बुद्धिमान् को चाहिये कि फल की अपेक्षा छोड़ कर सात्विक यज्ञ का सेवन करे किन्तु राजस तामस का नहीं॥३॥

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा । स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥ ४ ॥

प०-काली । कराली । च । मनोजवा । च । सुलोहिता । या । च । सुधूम्रवर्णा । स्फुलिङ्गिनी । विश्वरूपी । च । देवी । लेलायमानाः । इति । सप्त । जिह्वाः ॥ ४ ॥

अ०-(काली) कृष्णवर्णा (कराली) भयङ्करा (च) तथा (मनोजवा) शीघ्रतरगतिमती (च) अपि (सुलोहिता) सम्यग्रक्तवर्णा (या, च) यापि (सुधूम्रवर्णा) शोभनो धूम्रस्येव वर्णो यस्याः (स्फुलिङ्गिनी) स्फुलिङ्गा विद्यन्तेऽस्यां सा (विश्वरूपी) कृष्णादिसर्ववर्णसंयुक्ता (च) अपि (देवी) दर्शनीया सर्वासां विशेषणमेतत् (इति) उक्तनामिकाः (लेलायमानाः) दीप्यमाना अग्नेः (सप्त) (जिह्वाः) जोहूयते यासु ता ज्वालास्तरङ्गा भवन्ति ॥

भा०-प्रज्वलितेऽग्नावेव जुहुयादिति विधीयते तत्र प्रज्वलनस्य भेदा दर्शिता एतेष सर्वभेदेषु विदुषा होतव्यम् । नत्वप्रज्वलिते होतव्यमिति । केन प्रकारेण प्रज्वलिते होतव्यम् ? इति शङ्कानिवारणायेदं वच आरभ्यते ॥ ४ ॥

भाषार्थः-(काली) कालेरंग से युक्त (कराली) भयङ्कर (च) तथा (मनोजवा अतिशीघ्र उठने वाली (च) और (सुलोहिता) अच्छे प्रकार शुद्ध लालरंग युक्त (या, च) और जो (सुधूम्रवर्णा) देखने योग्य धूम के तुल्य जिस का वर्ण हो (स्फुलिङ्गिनी) चिनगारों वाली (च) और (विश्वरूपी) काले आदि सब रंगों से युक्त (इति) ये (सप्त) सात नाम वालीं सात प्रकार के गुणों से युक्त (देवी) देखने योग्य और (लेलायमानाः) प्रकाशमान (जिह्वाः) जिन में वार २ होम किया जाता वे ज्वाला वा तरंगें कहाती हैं॥

भा०-प्रज्वलित हुए अग्नि में ही होम करना चाहिये ऐसा विधान शास्त्रों में किया है। सो यहां मन्त्र में अग्नि के जलने के भेद दिखाये गये हैं इन्हीं सब प्रकार की ज्वालाओं में होम करना चाहिये किन्तु बुते हुए अग्नि में होम न करे। प्रज्वलित में किस प्रकार से होम करे इस शङ्का को दूर करने के लिये अगला मन्त्र कहते हैं ॥ ४ ॥

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन्। तन्नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः ॥ ५ ॥

एतेषु। यः। चरते। भ्राजमानेषु। यथाकालम्। च। आहुतयः। हि। आददायन्। तम्। नयन्ति। एताः। सूर्यस्य। रश्मयः। यत्र। देवानाम्। पतिः। एकः। अधिवासः॥ ५॥

अ०-(यः) कर्मफलमनाश्रितः कार्यं वैदिकमग्निहोत्रादि कर्म कुर्वाणो यतचित्तात्मा विद्वान्

(एतेषु) पूर्वोक्तेषु (भ्राजमानेषु) दीप्तिमत्सु वह्निप्रज्वलनभेदेषु (यथाकालम्) कालमनतिक्रम्य प्रातरुत्थितः परमात्मस्तुतिप्रार्थनापुरस्सरम् (आहुतयः) आहुतीः। विभक्तिव्यत्ययेनात्र प्रथमा (हि) निश्चयेन विश्वासपूर्वकम् (आददायन्) समन्ताद्ददाति (चरते, च) आचरणमपि छलकपटादिरहितं सत्यमेव करोति (तम्) त्यक्तभोगाभिलाषं यजमानं विद्वांसम् (एताः) आहुतयः (सूर्यस्य) (रश्मयः) रश्मिगताः संचितकर्मरूपा भूत्वा (अधिवासः) अधिवसति निवसति सर्वं जगदस्मिन् सः (एकः) अद्वैतः (देवानाम्) विदुषां मुक्तानामपि (पतिः) रक्षकः स्वामी (यत्र) ध्यायिनां प्रत्यक्षदशायां तुरीयावस्थायां विद्यते तत्र तस्याम् (नयन्ति) प्रापयन्ति॥

भा०-यः कश्चिन्मुमुक्षुरग्निहोत्रादि वेदविहितं कर्म लौकिकफलकाङ्क्षाराहित्येन श्रद्धया नियमेनाप्रमादेन यथाकालं प्रतिदिनं सेवते तत्कर्म संचितं भूत्वा परमात्मप्राप्तिरूपं मुक्तिफलं कालेन निष्पादयति। ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिनेति भगवद्गीतासु चोक्तम्॥ ५॥

भाषार्थः-(यः) जो कर्मके फल की कांक्षा को छोड़ कर वैदिक अग्निहोत्रादि करने योग्य कर्म करता हुआ मन और आत्मा को वश में रखने वाला विद्वान् (एतेषु) इन पूर्वोक्त (भ्राजमानेषु) प्रकाशमान अग्नि के ज्वालारूप सात भेदों में (यथाकालम्) प्रातः सायंकाल जो होमादि का समय है उस का उल्लङ्घन न करके परमात्मा की स्तुति प्रार्थना पूर्वक (हि) निश्चित मन से श्रद्धा विश्वासपूर्वक (आहुतयः) आहुतियों को (आददायन्) अच्छे प्रकार देता-छोड़ता है (च) और (चरते) छल कपटादि रहित सत्य आचरण भी करता है (तम्) उस भोग की इच्छा को त्याग देने वाले यजमान विद्वान् को (एताः) ये उक्त आहुति (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मयः) किरणों में प्राप्त हुई संचित कर्मरूप होकर उस दशा में (नयन्ति) पहुंचाती हैं कि (यत्र) जहां ध्यानशीलों की चतुर्थ समाधि अवस्था में (देवानाम्) मुक्त विद्वानों का स्वामी (पतिः) रक्षक (एकः) एक अद्वितीय (अधिवासः) सब जगत् का आधार परमात्मा साक्षात् जाना जाता है ॥

भा०-जो कोई मुमुक्षु अग्निहोत्रादि वेदविहित कर्म को फल की अभिलाषा तथा प्रमाद छोड़ के श्रद्धा पूर्वक नियम के साथ नित्य प्रतिदिन सेवन करता है वह कर्म संचित होकर परमात्मा की प्राप्तिरूप मुक्ति फल को धीरे २ सिद्ध करता है । भगवद्गीता में भी लिखा है कि निष्काम ध्यान देकर किये वैदिक कर्म से ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति । प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ॥ ६ ॥

प०–एहिएहि । इति । तम् । आहुतयः । सुवर्चसः । सूर्यस्य । रश्मिभिः । यजमानम् । वहन्ति । प्रियाम् । वाचम् । अभिवदन्त्यः । अर्चयन्त्यः । एषः । वः । पुण्यः । सुकृतः । ब्रह्मलोकः ॥६॥

अ०–संचितकर्मणः कृत्यं विशेषतया प्रतिपाद्यते–(तम्) पूर्वोक्तं यजमानं विद्वांसम् (सुवर्चसः) शोभनस्य तेजस उत्पादिकः (आहुतयः) (सूर्यस्य) (रश्मिभिः) शरीरपातादूर्ध्वं मुक्तिदशां प्रापयितुम् (एहि–एहि, इति) एवंप्रकारेणोक्त्वेव (प्रियां,वाचं,वदन्त्यइव) (अर्चयन्त्यः) यथा प्रियभाषणेनादरं कुर्वन् कश्चित्सुखयेत् तथा सुखहेतुका भूत्वा (वहन्ति) मुक्तिदशां प्रापयन्ति कथं वदन्त्यइत्याह–(वः) युष्माकम् । आदरार्थं बहुवचनम् (सुकृतः) शोभनकर्मणः फलरूपः (एषः) प्रत्यक्षः (पुण्यः) पुण्यस्वरूपः पवित्रः (ब्रह्मलोकः) ब्रह्मणो दर्शनमस्ति । अत्र नास्ति दुःखस्य लेशोऽपि किन्तु शान्तिरूपं सुखमेव बहुकालावधि भोक्तव्यम् ॥

भा०–सुकृतस्य कर्मणः सर्वे प्रकारा वासनारूपेण हृदिस्थिताः फलप्राप्तिदशायां सम्यक्तया प्रस्फुरन्ति तेन पुण्यात्मा जानाति मया कृतस्यै तस्यैव शुभकर्मण इदं फलमुपस्थितम् । तत्र

कर्मैव चेतनवत्कथयतीति कर्मणः प्राधान्यबोधनायालङ्कारेण कथनमिदम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—संचित कर्म के कृत्य को विशेष प्रकार से सिद्ध दिखाते हैं (तम्) उस पूर्वोक्त यजमान विद्वान् को (सुवर्चसः) सुन्दर धर्म सम्बन्धी तेज वा प्रकाश को उत्पन्न करने वाली (आहुतयः) संचित आहुति (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों द्वारा शरीर छूटने पश्चात् मुक्तिदशा को प्राप्त कराने के लिये (एहि, एहि, इति) आइये २ इस प्रकार से कह कर (प्रियाम्, वाचम्) प्रिय वाणी को (वदन्त्यः) कहती हुई (अर्चन्त्यः) और जैसे प्रिय भाषण से आदर करता हुआ कोई किसी को सुख पहुंचावे वैसे सुख की हेतु होकर (वहन्ति) मुक्तिदशा को प्राप्त कराती हैं। किस प्रकार कहती हुईं कि-(वः) तुम्हारा (सुकृतः) सुन्दर कर्म का फलरूप (एषः) यह (पुण्यः) पुण्य स्वरूप पवित्र (ब्रह्मलोकः) परमेश्वर का दर्शन वा ज्ञान है। इस में दुःख का लेश भी नहीं है किन्तु शान्तिरूप सुख ही प्राप्त होना है ॥

भा०—अच्छे धर्म सम्बन्धी कर्म के सब भेद वासनारूप से हृदय में स्थित रहते, फल प्राप्ति की दशा में सम्यक् रीति से प्रकट होते हैं। उस से पुण्यात्मा पुरुष जान लेता है कि मेरे किये अमुक शुभ कर्म का यह फल प्राप्त हुआ है वहां कर्म ही चेतन के तुल्य जानो कहता है ऐसी रीति से कर्म की प्रधानता जताने के लिये यह कथन किया है ॥ ६ ॥

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म। एतच्छ्रे-

यो येऽभिनन्दति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापियन्ति ॥७॥

प०-प्लवाः । हि । एते । अदृढाः । यज्ञरूपाः । अष्टादशोक्तम् । अवरम् । येषु । कर्म । एतत् । श्रेयः । ये । अभिनन्दन्ति । मूढाः । जरामृत्युम् । ते । पुनः । एव । अपियन्ति ॥ ७ ॥

अ०-(येषु) यज्ञेषु (अष्टादशोक्तम्) दशेन्द्रियाणि शरीरं मनः पञ्च प्राणा आत्मा चैतदष्टादशसमुदायस्य सम्पत्तये कौशल्यसम्पादनाय च शास्त्रेषूक्तम् (अवरम्) जन्ममरणप्रवाहप्रवर्त्तनेन संसारिकाम्यफलप्रदाने समर्थम् (कर्म) अस्ति (ये) (मूढा) (एतत्, श्रेयः) एतदेव कर्म फलप्रापणं श्रेयो मोक्षइति (अभिनन्दन्ति) सर्वोत्कृष्टं मत्वा समन्ताद्धृष्यन्ति (ते) (पुनः, एव) मुहुर्मुहुरेव (जरामृत्युम्) वृद्धावस्थया मृत्युं मरणम् (अपियन्ति) प्राप्नुवन्ति नष्टा भ्रष्टाश्च भवन्ति ॥

भा०-यद्यपि जगत्यधमतरदुःखिदरिद्रिनिर्बुद्धिनिर्विद्यजनापेक्षया विद्यादिसर्वधनोपेताः सुखभोगपूर्णसामग्रीसम्पन्ना जना अत्युत्तमाः सन्ति तथापि ते मोक्षानन्दिपुरुषापेक्षयाऽत्यन्ताधमा दुःखिनएव ये लोके स्त्रीधनपुत्राद्यैश्वर्यम-

वाप्य तमेव परमं कल्याणपन्थानं मत्वा मुक्तिसुखं परमात्मज्ञानलक्षणं परमार्थं तृणीकृत्य कृतकृत्या वयमिति मन्यन्ते तेऽत्र निन्द्यन्ते। भगवद्गीतासुचोक्तम्-

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिकाबुद्धिः समाधौनविधीयते ॥७॥

भाषार्थः-(येषु) जिन यज्ञों में (अष्टादशोक्तम्) दश इन्द्रिय शरीर मन पांच प्राण और आत्मा इन अठारह का सौभाग्य और कुशल क्षेम बनने के लिये शास्त्रों में कहा (अवरम्) संसारी कामना युक्त फल देने में समर्थ (कर्म) कर्म है (ये) जो (मूढाः) मूर्ख लोग (एतत्) इसी उक्त कर्म को (श्रेयः) परम कल्याणमार्ग वा मोक्ष है ऐसा (अभिनन्दन्ति) सर्वोत्कृष्ट मान कर अच्छे प्रकार आनन्द मानते हैं (ते) वे (पुनः, एव) वार २ ही (जरामृत्युम्) वृद्धावस्था के साथ होने वाले मृत्यु को (अपियन्ति) प्राप्त होते अर्थात् नष्ट भ्रष्ट होते हैं॥

भा०-यद्यपि जगत् में अत्यन्त नीच दशा के बीच पड़े दुःखी दरिद्री निर्बुद्धि मूर्खजनों की अपेक्षा विद्यादि सब उत्तम २ धनों से युक्त सुखभोग की पूर्णसामग्री वाले मनुष्य अत्युत्तम हैं तो भी वे मुक्ति के आनन्द का अनुभव करने वालों की अपेक्षा अति नीच वा दुःखी ही माने जाते हैं। जो जगत् में स्त्री धन पुत्रादि ऐश्वर्य को प्राप्त होके उसी को परम कल्याण का मार्ग मान कर परमात्मा के ज्ञानरूप परमार्थ सम्बन्धी मुक्ति सुख को तुच्छ करके

हम कृतकृत्य हैं ऐसा मानते हैं उन की यहां निन्दा की है। सो भगवद्गीता में भी लिखा है कि—

मूर्ख अज्ञानी लोग जिस निष्फल [चित्र विचित्ररूप पुष्प जिस में लगे हैं ऐसी] पुष्पितवाणी को कहते हैं कि वेदादिशास्त्र पढ़ने जानने का भी फल जो कुछ है वह यही संसार में उत्तम २ स्त्री पुत्र राज्य स्वर्ग धनैश्वर्यादि है इस से परे जन्मान्तर परलोक में मुक्ति सुख भोगादि कुछ नहीं है! वे मनुष्य कामसुख में बड़े प्रवीण होते वेदादि के सिद्धान्त पर वाद विवाद करने में प्रवृत्त रहते किसी को पराजित कर अपने को सर्वोपरि मानते और अहङ्कार रूप मद में मत्त रहते हैं। उन भोग में आसक्त पुरुषों की बुद्धि योगाभ्यास वा समाधि में न लगने से वे सदा परमार्थ से विमुख ही रहते हैं ॥ ७ ॥

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयन्धीराः पण्डितम्मन्यमानाः। जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः ॥ ८ ॥

प०—अविद्यायाम्। अन्तरे। वर्त्तमानाः। स्वयम्। धीराः। पण्डितम्मन्यमानाः। जङ्घन्यमानाः। परियन्ति। मूढाः। अन्धेन। एव। नीयमानाः। यथा। अन्धाः ॥ ८ ॥

अ०—तदेव पुनरपि द्रढयति—(अविद्यायाम्) अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरूपाऽविद्या तस्याः (अन्तरे) मध्ये (वर्त्तमानाः) लिप्तास्तदुत्कर्षायैव विशेषतः प्रयत-

मानाः (स्वयन्धीराः) वयं धीरा ध्यानवन्तो विचारशीलाः पूर्वापरमालोच्य कार्यमनुष्ठातुं शक्ताइत्यादिप्रकारेण स्वात्मानम् (पण्डितम्मन्यमानाः) पण्डितशब्देनैवास्माज्जना व्याप्रियन्तेऽतो वयं पण्डिताइति मन्यमानाः (जङ्घन्यमानाः) अनेकप्रतिकूलोपद्रवैः पुनःपुनस्ताड्यमानाः (मूढाः) विक्षिप्तचित्ताः (यथा, अन्धेनैव) चक्षुषा रहितेनैव (नीयमानाः) चाल्यमानाः (अन्धाः) कार्यासक्तचित्ता धावन्तो गर्त्तकण्टकादिषु पतित्वा महद्दुःखं भजन्ते तद्वदविद्यान्धकारे निमग्ना दर्शनज्ञानविहीनास्तत्त्वमपश्यन्तः (परियन्ति) परितइतस्ततो गच्छन्ति । ऐहिकसुखभोगसञ्चयाय धावन्ति ॥

भा०—अभ्युदयिकशास्त्रज्ञानेन भोगैश्वर्यमवाप्ता लोकैर्दत्तप्रतिष्ठा अहङ्कुर्वाणा अविद्यालक्षणेषु निमग्ना पुरुषाः परमार्थं प्राप्तुमशक्ताएव ॥८॥

भाषार्थः—उसी पूर्वोक्त विषय को फिर भी दृढ करतेहैं (अविद्यायाम्) अनित्य शरीरादि को नित्य समझना, अपवित्र शरीरादि को पवित्र मानना, दुःख को सुख और अनात्मा शरीरादि को आत्मा समझना रूप अविद्या के (अन्तरे) बीच (वर्त्तमानाः) उसी अविद्यादि की वृद्धि के लिये विशेष कर प्रयत्न करते उसी में दिन रात लिप्त (स्वयम्, धीराः) हम विचारशील हैं आगा पीछा

शोच समझ के कार्य का प्रारम्भ वा अनुष्ठान करने में समर्थ हैं इस प्रकार अपने को (पण्डितम्मन्यमानाः) हम को सब लोग पण्डित कहते हैं इस लिये हम पण्डित हैं ऐसा मानते हुए (जङ्घन्यमानाः) अपने प्रतिकूल अनेक उपद्रवों से वार २ पीड़ित (यथा) जैसे (अन्धेनैव,नीयमानाः,अन्धाः) नेत्र रहित अन्धे के साथ चलने वाले जिन का मन कार्य की सिद्धि में आसक्त है ऐसी दशा में मार्ग की ओर ध्यान भी न रखकर भागते हुए, कांटे और गढ़े आदि में गिर कर महादुःख भोगते हैं वैसे ही अविद्यारूप अन्धकार में दबे शास्त्र सम्बन्धी तत्त्वज्ञान से रहित सत् असत् का विवेक करने वाली बुद्धि से कल्याण का मार्ग न देखते हुए (मूढाः) विक्षिप्त चित्त मूर्ख लोग (परियन्ति) सब ओर से इधर उधर को संसारी अनित्य सुख के साधनों का संचय करने के लिये भाग रहे हैं॥

भा०-शास्त्र के संसार सम्बन्धी ज्ञानरूप ऐश्वर्य को प्राप्त हुए संसारी मनुष्यों से लोक में प्रतिष्ठा को प्राप्त अहङ्कार करते हुए अविद्या के लक्षणरूप अगाध समुद्र में डूबे पुरुष परमार्थ को नहीं प्राप्त हो सकते ॥ ८ ॥

अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति वालाः। यत् कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते॥ ९ ॥

प०-अविद्यायाम् । बहुधा । वर्त्तमानाः । वयम् । कृतार्थाः । इति । अभिमन्यन्ति । वालाः । यत्कर्मिणः । न । प्रवेदयन्ति । रागात् । तेन । आतुराः । क्षीणलोकाः । च्यवन्ते ॥ ९ ॥

अ०-पुनरप्युक्तमेव प्रपञ्चयति (अविद्यायाम्) बहुप्रकारैर्भिन्नायामुक्तायाम् (बहुधा) बहुप्रकारैः

(वर्त्तमानाः) तस्या उत्कर्षाय प्रयतमानास्तस्यामासक्ता वा (बालाः) अज्ञास्तत्त्वज्ञानहीनाः (वयम्) (कृतार्थाः) सिद्धप्रयोजनाः प्राप्तस्त्रीपुत्रधनैश्वर्यादिभोगा अस्मच्छदृशः कोऽस्त्यन्यः ? (इति) इत्यादिप्रकारेण (अभिमन्यन्ति) अभिमानं कुर्वन्ति (रागात्) रागमाश्रित्य (यत्कर्मिणः) यस्मिन् कर्मणि कृतानुरागा आसक्ताः (तेन) कर्मफलप्राप्तिहेतुना (आतुराः) दुःखिता धावमानाः (क्षीणलोकाः) विनष्टतत्त्वज्ञाना दर्शनशास्त्रहीनाः परमार्थसम्बन्धिबृहत्सुखप्राप्तिप्रयोजनात् (च्यवन्ते) च्युता भवन्ति किन्तु रागादेव तत्त्वं (न,प्रवेदयन्ति) नहि जानन्ति ॥

भा०—न्यायशास्त्रस्य वात्स्यायनभाष्य उक्तम्-मुक्तिसुखरागेणापि मोक्षाय घटमानो न मोक्षमधिगच्छेन्नाधिगन्तुमर्हति । बन्धनसमाज्ञातो हि रागः । अयमाशयः—रागद्वेषमोहा एव दोषास्ते मुमुक्षुणा पूर्वमेव हेयाः सति रागे बन्धनमेव रागो बन्धनहेतुः । यस्य कस्मिंश्चिद्रागस्तस्य द्वेषोऽप्यवश्यं भवति। अहंगौरः शोभनाकृतिमान् युवा धनैश्वर्यसम्पन्नो विद्वान् बलवान् पुत्रवान्

प्रियस्त्रीकश्चास्मि नास्ति मत्सदृशः कश्चित् । इत्यादिप्रकारेणाविद्यायां निमग्ना परमार्थविमुखा नहि ब्रह्मज्ञानसुखमाप्तुमर्हन्ति ॥ ९ ॥

भाषार्थः–फिर भी उक्त विषय को ही स्पष्ट करते हैं:–(अविद्यायाम्) बहुत प्रकारों वाली उक्त अविद्या में (बहुधा) बहुत प्रकारों से (वर्त्तमानाः) उस अविद्या की वृद्धि के लिये प्रयत्न करते वा उस में आसक्त (बालाः) अज्ञानी तत्त्वज्ञान से रहित मनुष्य (वयम्) हम (कृतार्थाः) कृतार्थ हैं स्त्री पुत्र और धनैश्वर्यादि भोग हम को प्राप्त है हमारे समान अन्य कौन है ? (इति) इत्यादिप्रकार से (अभिमन्यन्ति) अभिमान करते हैं (रागात्) राग का आश्रय लेकर (यत्कर्मिणः) जिस कर्म में आसक्त हुए (तेन) उस कर्म के फल प्राप्ति हेतु से (आतुराः) दुःख में फंस कर भागते हुए (क्षीणलोकाः) जिन ने दर्शन न्यायादि शास्त्रों को नहीं देखा इसी से तत्त्वज्ञान रहित हुए परमार्थ सम्बन्धि महान् सुख प्राप्ति रूप प्रयोजन से (च्यवन्ते) च्युत होते हैं किन्तु राग–प्रीति का रङ्ग चढ़ जाने से ही (न, प्रवेदयन्ति) नहीं जानते ॥

भा०–न्यायशास्त्र के वात्स्यायन भाष्य में लिखा है कि जो मुक्ति सुख प्राप्ति के राग से भी मोक्ष के लिये प्रयत्न करता है वह मोक्ष को प्राप्त नहीं हो सकता अर्थात् वह मुक्ति का अधिकारी नहीं क्योंकि बन्धन का हेतु राग उस में बना है जिस में राग बना है वहां किसी से द्वेष भी अवश्य रहेगा, इसी राग में फंसा मनुष्य समझता है कि मैं गोरा देखने में सुन्दर ज्वान धनैश्वर्य युक्त विद्वान् बलवान् पुत्रवान् और प्रिय स्त्री वाला हूं मेरे तुल्य कोई नहीं है । इत्यादि प्रकार से अविद्या में डूबे परमार्थ से विमुख मनुष्य ब्रह्मज्ञान के सुख को प्राप्त नहीं होसकते ॥ ९ ॥

इष्टापूर्त्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः । नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं चाविशन्ति ॥ १० ॥

प०—इष्टापूर्त्तम् । मन्यमानाः । वरिष्ठम् । न । अन्यत् । श्रेयः । वेदयन्ते । प्रमूढाः । नाकस्य । पृष्ठे । ते । सुकृते । अनुभूत्वा । इमम् । लोकम् । हीनतरम् । च । आविशन्ति ॥ १० ॥

अ०—ये (प्रमूढाः) प्रकृष्टमोहान्धकाराज्ञानयुक्ताः (इष्टापूर्त्तम्) लौकिकफलभोगोत्कण्ठां पुरस्कृत्य श्रौतं स्मार्त्तं च कर्म (वरिष्ठम्) अतिश्रेष्ठम् । एतत्फलावाप्त्यैव कृतकृत्या वयमिति (मन्यमानाः) अतः परम् (नान्यच्छ्रेयः) अन्यच्छ्रेयो नास्ति—इति (वेदयन्ते) जानन्ति (ते) (सुकृते) स्वेनैव संचितकर्मणा निष्पादिते (नाकस्य) न विद्यतेऽकं दुःखमस्मिन् तस्य जगत्प्रदेशस्य (पृष्ठे) स्थले उपरि (अनुभूत्वा) पुण्यफलं विशिष्टसुखमनुभूय (इमम्) प्रत्यक्षम् (हीनतरम्) अतिनिकृष्टं दुःखबहुलं प्रदेशम् (च) अपि (आविशन्ति) प्राप्नुवन्ति ॥

भा०—ये संसारिणो जनाः स्त्रीपुत्रधनराज्यै-

श्वर्यादिजन्यं सुखमेव परमकल्याणहेतुकं मत्वा निर्विघ्नमेतत्सुखं याचमानास्तत्सुखप्राप्तिकामनया यज्ञादिवैदिकं कर्मेष्टं वापीकूपतडागाराम-निपानानाथालयादीनां परोपकारार्थं निर्माणं पूर्त्तं स्मार्त्तं कर्म कुर्वन्ति। तत्फलरूपादुक्तसुखात्प्रकृष्टं कल्याणहेतुकमन्यद्ध्यानसमाध्युपासनादिजन्यं परोक्षं जन्मान्तरेऽनुभूयमानं सुखं नास्तीति कृतनिश्चयाः संसारिफलप्रापके कर्मण्येवाहर्निशं रमन्ते ते जन्ममरणसरित्प्रवाहान्निस्सृत्य कदापि मुक्ता न भवन्ति। अर्थादेवं कर्मिणो जगति प्रकृष्टं सुखमवाप्य पुनर्दुःखे निपतन्ति किन्त्वानन्दमयं ब्रह्म कर्हिचिदपि नाप्नुवन्ति येन निर्विकल्पानन्दस्यानुभवः स्यात्। नह्यत्र श्रौतस्मार्त्तं कर्मणी निन्द्येते अपितु परोक्षं परमार्थज्ञानसुखं तृणीकृत्यानित्यसुखमेव श्रेष्ठतमं मन्यमाना मूढा निन्द्यन्ते॥ १०॥

भावार्थः-जो (प्रमूढाः) अत्यन्त मोहान्धकाररूप अज्ञान से युक्त पुरुष (इष्टापूर्त्तम्) लौकिकफल भोग की इच्छा को आगे करके अग्निहोत्रादि वेदोक्तकर्मऔर प्याऊ बैठाना आदि स्मार्त्त कर्म को (वरिष्ठम्) अत्यन्त प्रशस्त (मन्यमानाः) मानते हुए कि इस फल की प्राप्ति से ही हम कृतकृत्य हैं। इस से परे (नान्यच्छ्रेयः) अन्य कोई अधिक कल्याण का मार्ग नहीं है ऐसा

(वेदयन्ते) जानते हैं (ते) वे (सुकृते) अपने संचित किये कर्म से सिद्ध हुए (नाकस्य) दुःख रहित जगत् के प्रदेश के पृष्ठे स्थल में (अनुभूत्वा) पुण्य के फल विशेष सुख का अनुभव कर (इमम्) इस प्रत्यक्ष मनुष्यादि शरीर में तथा (हीनतरम्) अति नीच बहुत दुःख वाले स्थावरादि योनियों में (च) भी (आविशन्ति) प्राप्त होते हैं ॥

भा०–जो संसारी मनुष्य स्त्री पुत्र धन और राज्य सम्बन्धी ऐश्वर्य से होने वाला सुख ही परम कल्याण का हेतु है ऐसा मान कर इस सुख के निर्विघ्न प्राप्त होने की प्रार्थना करते हुए उस सुख प्राप्ति की इच्छासे यज्ञादि वैदिककर्म और बावली, कुआ, तालाब, बगीचा, प्याऊ और अनाथालयादि का परोपकार होने के लिये बनाना आदि स्मार्त्त–धर्मशास्त्र सम्बन्धी कर्म को करते हैं उस कर्म के फलरूप उक्तसुख से उत्तम कल्याण का हेतु अन्य ध्यान समाधि उपासनादि से होने वाला, जिस का जन्मान्तर में अनुभव होना है ऐसा परोक्ष सुख नहीं है इस प्रकार का निश्चय रखने वाले पुरुष संसारी फल के देने वाले कर्म ही में दिन रात रमते हैं वे जन्म मरण प्रवाह वाली नदी से निकल कर कभी मुक्त नहीं होते । अर्थात् ऐसे कर्म वाले संसार में उत्तम सुख पाकर फिर २ दुःख में गिरते हैं किन्तु आनन्द स्वरूप ब्रह्म को कभी भी प्राप्त नहीं होते । जिस से निःशङ्क आनन्द प्राप्त हो । इस मन्त्र में श्रौतस्मार्त्त कर्मों की निन्दा नहीं कीगई है किन्तु परमार्थ सम्बन्धी परोक्ष सुख को तुच्छ मानकर अनित्य विषय सुख को अतिप्रशस्त मानतेहुए मूर्खों की निन्दाकी गईहै १०

तपःश्रद्धेये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः । सू-

सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रा-
मृतः पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥११॥

प०-तपःश्रद्धे । ये । हि । उपवसन्ति । अरण्ये । शान्ताः । विद्वांसः । भैक्षचर्याम् । चरन्तः । सूर्यद्वारेण । ते । विरजाः । प्रयान्ति । यत्र । अमृतः । पुरुषः । हि । अव्ययात्मा ॥११॥

अ०-(ये,हि) (शान्ताः) संसारिसुखादुपरतबुद्धयः (विद्वांसः) शास्त्रज्ञाः (भैक्षचर्याम्) भृत्यादिना वाणिज्येन वा वृत्तिं विहाय भिक्षया नियतं प्राणयात्रामात्रं श्रद्धालुजनादन्नमादाय जीवनम् (चरन्तः) यापयन्तः (अरण्ये) नानाशब्दवर्जिते वनाद्येकान्तप्रदेशे (तपःश्रद्धे) द्वन्द्वसहनव्रतधारणरूपं तपो वैदिकमग्निहोत्रादिकर्म च कुर्वन् (उपवसन्ति) स्वात्मनि निरुद्धचेतसो निवसन्ति (ते) (विरजाः) शुद्धा निष्पापाः सन्तः (यत्र) यस्यां दशायाम् (अव्ययात्मा) अविनाशिस्वरूपः (अमृतः) नित्यमुक्तः (पुरुषः) पूर्णो व्याप्तः परमात्मास्ति तत्र (सूर्यद्वारेण) मूर्द्धगतप्राणनाडीद्वारा (प्रयान्ति) प्रयाणकाले निस्सरन्ति गच्छन्ति तामेव दशामाप्नुवन्ति ॥

भा०-कर्मफलभोगेषु रक्तानां दशा पूर्वमुक्ता। इदानीं कर्मफलभोगोत्कण्ठां विहाय वैदिके

कर्मणि तत्पराणां दशोच्यते । ये शुद्धाः शान्ता भोगादुपरताश्च भूत्वा श्रद्धया विश्वासेन चेश्वराज्ञारूपं वेदोक्तमग्निहोत्रादिकं कर्म सेवन्ते ते ज्ञानिनो मरणावसरे उपात्तं कलेवरं त्यक्त्वा मुक्ता भवन्ति ॥ ११ ॥

भाषार्थः-(ये,हि) जो ही (शान्ताः) संसारी सुख भोग से जिन की बुद्धि विरक्त होगई ऐसे (विद्वांसः) शास्त्रज्ञाता विद्वान् लोग (भैक्षचर्याम्) नौकरी वा व्यापार से जीविका छोड़ कर श्रद्धालु मनुष्य से प्राण स्थिति के निर्वाहमात्र आठ ग्रास अन्न को लेकर जीवन (चरन्तः) व्यतीत करते हुए (अरण्ये) नाना प्रकार के शब्दों से रहित वनादि एकान्त देश में (तपःश्रद्धे) शीत उष्णादि द्वन्द्वों का सहना वा नियम धारण रूप तप और अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म को करते हुए (उपवसन्ति) अपने अन्तःकरण में चित्त को रोक कर वसते हैं (ते) वे (विरजाः) शुद्ध निष्पाप हुए (यत्र) जिस दशा में (अव्ययात्मा) अविनाशीरूप (अमृतः) नित्य मुक्त (पुरुषः) पूर्ण व्याप्त परमात्मा है उस दशा में (सूर्यद्वारेण) मूर्द्धा ब्रह्माण्ड में रहने वाली प्राण नाड़ी द्वारा (प्रयान्ति) मरण समय में निकलते हैं अर्थात् परमेश्वर की उसी मुक्तदशा को प्राप्त होते हैं ॥

भा०-कर्मफल भोगों में आसक्त लोगों की दशा पहिले कही अब कर्मफल के भोग की अभिलाषा को छोड़ कर वैदिक कर्म में तत्पर पुरुषों की दशा कहते हैं-जो शुद्ध शान्त और भोग से विरक्त हो कर श्रद्धा और विश्वास से परमेश्वर की आज्ञा रूप वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्म का सेवन करते हैं वे ज्ञानी लोग मरण समय में प्राप्त हुए शरीर को छोड़ कर मुक्त होते हैं ॥ ११ ॥

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥१२॥

प०—परीक्ष्य। लोकान्। कर्मचितान्। ब्राह्मणः। निर्वेदम्। आयात्। नास्ति। अकृतः। कृतेन। तद्विज्ञानार्थम्। सः। गुरुम्। एव। अभिगच्छेत्। समित्पाणिः। श्रोत्रियम्। ब्रह्मनिष्ठम् ॥१२॥

अ०—(ब्राह्मणः) ब्रह्मणो वेदस्य ज्ञाता ब्रह्मणः परमात्मनो ज्ञाने प्राप्तौ निषण्ण आसक्तो जिज्ञासुर्जनः (कर्मचितान्) कृतैः शुभाशुभकर्मभिः फलभोगोत्कण्ठया संचितान् (लोकान्) लोकितुं द्रष्टुं योग्यान् स्त्रीधनपुत्रादिपदार्थान् सुखहेतून् (परीक्ष्य) परिणामादिना दुःखहेतून् निश्चित्य (निर्वेदम्) संसारिसुखभोगादौदासीन्यम् (आयात्) प्राप्नुयात् कुतः (कृतेन) कर्मणा निष्पादितेन फलभोगेन (अकृतः) अकृत्रिमो जगदीश्वरः (नास्ति) निष्पादयितुं प्राप्तुमशक्यः कथन्तर्हि ज्ञेयस्तदाह (सः) उक्तविधो ब्राह्मणः (तद्विज्ञानार्थम्) ब्रह्मज्ञानाय (समित्पाणिः) समिधः पाणौ हस्ते यस्य तादृशो यद्वा समित्सम्यगिद्धा दीप्तो-

परिस्थता वेदविद्या पाणौ हस्तामलकवद्यस्य तथाभूतः सन् (ब्रह्मनिष्ठम्) ब्रह्मणि परमात्मनि निष्ठा मनसः स्थितिर्यस्य तम् (श्रोत्रियम्) वेदपाठिनं वेदाशयज्ञम् (गुरुम्,एव) आचार्यमेव (अभिगच्छेत्) आभिमुख्येन गच्छेत् ॥

भा०—फलभोगोत्कण्ठयानुष्ठितस्य पुण्यकर्मणः फलप्राप्त्यापि ब्रह्मप्राप्तिरसम्भवा नहि कस्यचित्कर्मणः फलरूपं ब्रह्म किन्तु निष्कामकर्मानुष्ठानेनान्तःकरणशुद्धौ सत्यां ज्ञानाधिकारित्वं जायते । सोऽधिकारी ब्रह्मज्ञादाचार्यादुपदेशं गृह्णीयात् । स नास्ति जगति कस्यचित्सुखस्य भोगो यस्यादिमध्यावसानेषु क्वापि दुःखं नायात् किन्तु सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् । चक्रवत्परिवर्त्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥ एवं सुखभोगाभिलाषुणा दुःखमवश्यं भोक्तव्यम् । सुखभोगहेतुकार्यपदार्थप्राप्तौ ब्रह्मज्ञानानुभवोद्भव आनन्दएव निर्दुःखः । इत्यादिप्रकारेणालोच्य जिज्ञासुना फलभोगोत्कण्ठातो विरक्तेन भवितव्यमित्याशयः ॥ १२ ॥

भावार्थः—(ब्राह्मणः) वेद का जानने वाला वा परमेश्वर के ज्ञान और प्राप्ति के लिये उत्सुक जिज्ञासु मनुष्य (कर्मचितान्)

शुभ अशुभ कर्मों से फलभोग की इच्छा पूर्वक संचित किये (लोकान्) देखने योग्य सुख के हेतु सुन्दर स्त्री धन पुत्रादि पदार्थों को (परीक्ष्य) परिणामादि से परीक्षा कर अर्थात् दुःख के हेतु समझ कर (निर्वेदम्) संसारी सुख भोग से उदासीनता को (आयात्) प्राप्त हो क्योंकि (कृतेन) कर्म से सिद्ध हुए फल भोग से (अकृतः) अकृत्रिम परमात्मा किसी से (नास्ति) सिद्ध नहीं हो सकता। तो कैसे जाना जा सकता है सो कहते हैं-(सः) वह उक्त प्रकार का ब्राह्मण (तद्विज्ञानार्थम्) उस ब्रह्म को जानने के लिये (समित्पाणिः) समिधा जिस के हाथ में अथवा सम्यक् उपस्थित वेदविद्या जिस को हस्तामलक के तुल्य प्रत्यक्ष है ऐसा हुआ (ब्रह्मनिष्ठम्) जिस का मन परमेश्वर में स्थित है उस (श्रोत्रियम्) वेदपाठी वेद के अभिप्राय को जानने वाले (गुरुम्, एव) गुरु के पास ही (अभिगच्छेत्) सन्मुख जावे ॥

भा०-फल भोग की उत्कण्ठा से अनुष्ठान सेवन किये पुण्य कर्म का फल मिलने से भी ब्रह्म की प्राप्ति वा ज्ञान होना असम्भव है क्योंकि किसी कर्म का फलरूप ब्रह्म नहीं है किन्तु फल की कामना छोड़कर सेवन किये कर्म से अन्तःकरण की शुद्धि होने पर ज्ञान का अधिकारी होता है वह अधिकारी ब्रह्मज्ञानी आचार्य से उपदेश ग्रहण करे। जगत् में सुख का भोग ऐसा कोई नहीं जिस के आदि मध्य वा अन्त्य में कभी दुःख न आवे किन्तु किसी कवि ने कहा है कि (सुखस्यानन्तरं०) सुख के पीछे दुःख और दुःख के पीछे सुख गाड़ी के पहिये के समान आते जाते बने रहते हैं इस प्रकार सुख भोग के अभिलाषी को दुःख अवश्य भोगना पड़ता है। और सुख भोग के हेतु बनावटी पदार्थ के न मिलने पर ब्रह्मज्ञान के अनुभव से उत्पन्न हुआ आनन्द ही निर्दुःख है इत्यादि प्रकार से विचार कर जिज्ञासु पुरुष को फल भोग की उत्कण्ठा से विरक्त होना चाहिये यह अभिप्राय है ॥१२॥

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय। येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥१३॥

प०—तस्मै । सः । विद्वान् । उपसन्नाय । सम्यक् । प्रशान्तचित्ताय । शमान्विताय । येन । अक्षरम् । पुरुषम् । वेद । सत्यम् । प्रोवाच । ताम् । तत्त्वतः । ब्रह्मविद्याम् ॥ १३ ॥

अ०—गुरुणा किं कार्यमित्युच्यते—(सः, विद्वान्) (सम्यक्) (प्रशान्तचित्ताय) प्रकृष्टतया भोगवासनातः शान्तं चित्तमन्तःकरणमस्य तस्मै (शमान्विताय) इन्द्रियैरपि शान्त्या शुभकर्मणोऽनुष्ठात्रे (उपसन्नाय) समीपं प्राप्ताय (तस्मै) शिष्याय (येन) यादृशज्ञानेन (अक्षरम्) अविनाशिनम् (सत्यम्) सनातनम् (पुरुषम्) पूर्णं परमात्मानम् (वेद) जानाति (ताम्) तादृशीम् (ब्रह्मविद्याम्) (तत्त्वतः) याथातथ्येन (प्रोवाच) प्रब्रूयादुपदिशेत् ॥

भा०—अक्षरशब्देन प्रकृतेरपि ग्रहणं जायतेऽत एव सत्यपुरुषशब्दावक्षरशब्देन ब्रह्मणो ग्रहणाय विशेषणत्वेन परिपठितौ । यथा यस्मिन् क्षेत्रे उप्तं वीजं नोत्पद्यते तत्र बुद्धिमता कृषकेन न

वप्तव्यम् । तथैव विदुषा कुपात्रे विद्या न रक्षणीया तथा चोक्तम्–यमेव विद्याः शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम् । इत्यादिप्रकारकायाधिकारिणे प्राप्ताय याथातथ्येन ब्रह्मविद्योपदेष्टव्या ॥ १३ ॥

भाषार्थः—गुरु को क्या करना चाहिये सो कहते हैं (सः, विद्वान्) वह विद्वान् गुरू (सम्यक्, प्रशान्त चित्ताय) अच्छे शान्त चित्त वाले जिस के मन में विषय संबन्धी सुख भोग की वासना नहीं उस (शमान्विताय) इन्द्रियों से भी शान्तिपूर्वक शुभ कर्म के सेवन करने वाले (उपसन्नाय) समीप आये हुये (तस्मै) उस योग्य शिष्य के लिये (येन) जिस प्रकार के ज्ञान से (अक्षरम्) अविनाशी (सत्यम्) सनातन (पुरुषम्) पूर्ण व्याप्त परमात्मा को (वेद) जानता है (ताम्) उस प्रकार की (ब्रह्मविद्याम्) ब्रह्मविद्या को (तत्वतः) यथार्थ स्वरूप से (प्रोवाच) उपदेश करे ॥

भा०—अक्षर शब्द से प्रकृति का भी ग्रहण होता है इसी कारण यहां अक्षर शब्द से ब्रह्म का ग्रहण होने के अर्थ सत्य और पुरुष शब्द विशेषण होने को पढ़े हैं । जिस खेत में वोया बीज उत्पन्न नहीं होता वहां जैसे बुद्धिमान् किसान को न वोना चाहिये वैसे विद्वान् को उचित है कि कुपात्र को विद्या न देवे वेद में भी कहा है कि–हे विद्वन् जिस को तुम पवित्र अप्रमादी बुद्धिमान् ब्रह्मचारी जानो उसे विद्या देवो इत्यादि प्रकार के प्राप्त हुए अधिकारी पुरुष के लिये यथार्थ प्रकार से ब्रह्मविद्या का उपदेश करे ॥१३॥

इति प्रथम मुण्डके द्वितीयः खण्डो मुण्डकश्च समाप्तः ॥

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः । तथाक्षरात्पुरुषाः सोम्य-भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति १

प०–तत् । एतत् । सत्यम् । यथा । सुदीप्तात् । पावकात् । विस्फुलिङ्गाः । सहस्रशः । प्रभवन्ते । सरूपाः । तथा । अक्षरात् । पुरुषाः । सोम्य । भावाः । प्रजायन्ते । तत्र । च । एव । अपियन्ति ॥ १ ॥

अ०–इदानीमस्याः कार्यसृष्टेरुपादानं दर्शयति–(यथा) येन प्रकारेण (सुदीप्तात्) सुष्टुप्रज्वलितात् (पावकात्) अग्नेः सकाशात् (सरूपाः) तुल्यस्वरूपाः (विस्फुलिङ्गाः) (सहस्रशः) (प्रभवन्ते) उद्गच्छन्ति । हे (सोम्य) सोममर्हत तत्सम्बोधने शान्तप्रज्ञ जिज्ञासो (तथा) तेनैव प्रकारेण (अक्षरात्) स्वरूपेणाविनश्वरात् कारणात् प्रधानात् (भावाः) भवन्त्युत्पद्यन्ते ते भावाः कार्याणि वस्तूनि (पुरुषाः) साङ्गोपाङ्गाः प्राणिनिकायाश्च (प्रजायन्ते) उत्पद्यन्ते (तत्र, च, एव,) तस्मिन्नेव प्रधाने कारणे (अपियन्ति) प्रलीयन्ते ॥

भा०-अक्षरशब्दोऽत्र कारणरूपायाः प्रकृतेः पर्यायः । प्रकरणानुकूलं परमात्मनोऽपि वाचकोऽक्षरशब्दआयाति । अत्र चोत्तरमन्त्रेप्यक्षरशब्दोऽव्यक्तस्यैव वाचकोऽस्ति । इत्थमेव च तदेतत्सत्यमिति वक्तुमुचितम् । नहि जडस्योपादानं चेतनं ब्रह्मेति सत्यं भवितुमर्हति पुरुषशब्देन ब्रह्मतो जीवोत्पत्तिरप्यसत्यैवास्ति। जीवो नित्यइति प्रमाणशतस्य विद्यमानत्वात् । यद्यात्मा मलिनोऽस्वच्छो विकारी स्यात्स्वभावतः । नहि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मान्तरशतैरपीति च । अस्य शरीरादिकार्यस्य जगत उपादानं जडं प्रधानमेवास्ति नतु चेतनः परमात्मेत्याशयः १

भावार्थः-अब इस सृष्टि से उपादान कारण को दिखाते हैं—(यथा) जिस प्रकार से (सुदीप्तात्) अच्छे जले हुए (पावकात्) अग्नि से (सरूपाः) तुल्य रूप वाले (विस्फुलिङ्गाः) चिनगारे (सहस्रशः) हजारों (प्रभवन्ते) निकलते हैं । हे (सोम्य) शान्त बुद्धि वाले जिज्ञासु मनुष्य (तथा) वैसे ही (अक्षरात्) स्वरूप से अविनाशी प्रकृति नामक कारण से (भावाः) उत्पन्न हुए कार्य पदार्थ और (पुरुषाः) साङ्गोपाङ्ग प्राणियों के शरीर (प्रजायन्ते) उत्पन्न होते हैं और (तत्र, च, एव) उसी प्रधान कारण में (अपियन्ति) लय होते हैं ॥

भा०-यहां अक्षर शब्द कारणरूप प्रकृति का पर्याय वाचक है। प्रकरणानुकूल परमात्मा का वाचक भी अक्षर शब्द आता है। यहां अगले मन्त्र में भी अक्षर शब्द प्रकृति का ही वाचक है।

इसी प्रकार (तत्, एतत्, सत्यम्,) यह कहना ठीक बनता है क्योंकि जड़ जगत् का उपादान कारण चेतन ब्रह्म को मानना कदापि सत्य नहीं हो सकता। और इस मन्त्र में पुरुष शब्द कर के ब्रह्म से जीव की उत्पत्ति मानना भी असत्य ही है क्योंकि जीव नित्य है इत्यादि सैकड़ों प्रमाण विद्यमान हैं। एक विद्वान् ने लिखा है कि यदि जीवात्मा मलिन अपवित्र और स्वभाव से विकारी—बनने बिगड़ने वाला हो तो सैकड़ों जन्मों तक उपाय करने पर भी उस की मुक्ति नहीं हो सकती। इस कारण इस शरीरादि कार्य जगत् का उपादान कारण प्रकृति ही है किन्तु चेतन परमात्मा नहीं यह अभिप्राय है ॥१॥

दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः। अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥२॥

प०—दिव्यः। हि। अमूर्त्तः। पुरुषः। सः। बाह्याभ्यन्तरः। हि। अजः। अप्राणः। हि। अमनाः। शुभ्रः। हि। अक्षरात्। परतः। परः ॥ २ ॥

अ०—इतः पूर्वमन्त्रे जगत उपादानकारणमुक्तं ततो विलक्षणः परमात्मेत्युच्यते (सः) परोक्षः (पुरुषः) पूर्णो व्याप्तः परमात्मा (दिव्यः) दिवि प्रकाशस्वरूपे स्वात्मनि भवो विद्यमानः। नहि संसार्यात्मवदिन्द्रियादिषु सकदाचिदपि तदाकारवृत्तिर्भवति (हि, अमूर्त्तः) निश्चितः स-

क्ष्मः । नहि मूर्त्तवस्तुषु तिष्ठन्नपि जीवात्मवन्मूर्त्तः प्रत्यवभासते । जीवात्मा तु शरीराभिमानी सन् शरीरवदवभासतइति दृष्टचरम् (बाह्याभ्यन्तरः) बाह्येनाभ्यन्तरेण च साकं वर्त्तमानः । लोके बाह्यं वस्त्वाभ्यन्तरं न भवति नचाभ्यन्तरं बाह्यमिति तद्वदैकान्तिको नास्ति (हि, अजः) कदाचिदपि कथमपि न जायते सर्वविधोत्पत्तिरहितः । यद्यपि जीवात्मा प्रकृतिश्चाजास्ति तथापि कथंचिदनयोर्जायमानत्वं स्वीकार्यं भवति । यथा जीवात्मा पुत्रादिरूपेण जायते प्रकृतेश्च विकारा घटपटादिरूपेण जायन्ते । स्वरूपेणाविकारित्वादनयोरजत्वं विद्वद्भिर्मन्यते । न तद्वत्परमात्मा क्वापि जायते । अतएव (अप्राणः) जीवात्मनीव प्राणसम्बन्धो यस्मिन् नास्ति (हि, अमनाः) यथा जीवात्मा मनोरूपसाधनेन विजानाति मनसस्तमसि लीने सुषुप्तस्तिष्ठति तथा परेशो मनोऽन्तरेणैव सर्वं जानाति सुषुप्तश्च कदापि न भवति (शुभ्रः) शुद्धो निर्मलः (परतः) इन्द्रियादिभ्यः परस्मात् (अक्षरात्) स्वरूपेणाविनश्वरात् (परः,हि) सूक्ष्म एवास्ति नास्ति तस्मात्परं किमपि सूक्ष्मम् ॥

भा०—सर्वव्याप्तः प्रकाशमयो निराकारः सूक्ष्मतमः सर्वेन्द्रियसम्बन्धवर्जितः शुद्धः सनातनः प्रकृतेः परः परमेश्वरएव मुमुक्षुणोपासितव्य इत्याशयः ॥ २ ॥

भाषार्थः—इस से पूर्व मन्त्र में जगत् का उपादान कारण कहा है उस से विलक्षण परमेश्वर है सो कहते हैं-(सः) वह परोक्ष (पुरुषः) पूर्णव्याप्त परमात्मा (दिव्यः) प्रकाशस्वरूप अपने आत्मा में सदाविद्यमान रहने वाला अर्थात् संसार में फंसे जीवात्मा के तुल्य इन्द्रियादि में तदाकार वृत्ति वह कभी नहीं होता (हि,-अमूर्त्तः) निश्चय कर सूक्ष्म अर्थात् स्थूल पदार्थों में विद्यमान रहता भी जीवात्मा के तुल्य शरीरधारी प्रतीत नहीं होता और जीवात्मा तो शरीर का अभिमानी हुआ शरीर के तुल्य अपने को मानता है यह प्रत्यक्ष है (बाह्याभ्यन्तरः) बाहरी और भीतरी सब पदार्थों के साथ वर्त्तमान है। लोक में बाहरी वस्तु कभी भीतरी नहीं होता और न भीतरी बाहर होता है वैसे वह एकदेशी नहीं है (हि, अजः) कभी भी कैसे ही उत्पन्न नहीं होता अर्थात् सब प्रकार की उत्पत्ति से रहित है। यद्यपि जीवात्मा और प्रकृति भी उत्पन्न न होने से अज हैं तो भी किसी प्रकार इन दोनों का उत्पन्न होना मानने पड़ता है। जैसे जीवात्मा किसी के सम्बन्ध में पुत्रादिरूप से प्रकट होता और घटपटादिरूप से प्रकृति के विकार बनते हैं स्वरूप से अविकारी होने से इन दोनों का अनुत्पन्न होना विद्वान् लोग मानते हैं और परमात्मा इस प्रकार भी कहीं उत्पन्न नहीं होता इसी से (अप्राणः) जीवात्मा के तुल्य प्राण का सम्बन्ध जिस में नहीं (हि, अमनाः) जैसे जीवात्मा मनरूप साधन से

विचारता जानता है और तमोगुण में मन के लीन होने पर सुषुप्तिदशा में पहुंच जाता है वैसे परमेश्वर मन के विना ही सब जानता है तथा कभी सुषुप्ति में नहीं जाता (शुभ्रः) परमात्मा सदा शुद्ध निर्मल (परतः) इन्द्रियादि से पर सूक्ष्म (अक्षरात्) स्वरूप से अविनाशी प्रकृति से भी (परः, हि) अति सूक्ष्म ही है किन्तु उस से अधिक सूक्ष्म कोई नहीं ॥

भा०—सब में व्याप्त, प्रकाशरूप, निराकार, अत्यन्त सूक्ष्म, सब इन्द्रियों के सम्बन्ध से रहित, शुद्ध, सनातन और प्रकृति से परे जो परमेश्वर है वही मुमुक्षु पुरुष को उपासना करने योग्य है यह तात्पर्य जानो ॥२॥

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खंवायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥ ३ ॥

प०—एतस्मात् । जायते । प्राणः । मनः । सर्वेन्द्रियाणि । च । खम् । वायुः । ज्योतिः । आपः । पृथिवी । विश्वस्य । धारिणी ॥३॥

अ०—इतः पूर्वं परमात्मनः प्राणेन्द्रियेभ्यः पृथग्भावः प्रदर्शितः स च जन्यजनकसम्बन्धेऽपि प्राप्तस्तद्विधानार्थमिदमाह (एतस्मात्) पूर्वोक्तात्सर्वप्राणेन्द्रियसम्बन्धविवर्जितात् निमित्तरूपात् परमात्मतः (प्राणः) अपानादिभेदभिन्नो दशविधः शरीरस्थः (मनः) अन्तःकरणचतुष्टयम् (सर्वेन्द्रियाणि) भौतिकानि ज्ञानेन्द्रियाणि कर्मेन्द्रियाणि च (खम्) आकाशः शब्दगुणः (वायुः)

द्वितीयं तत्त्वं वायुः (ज्योतिः) अग्निः (आपः) उदकम् (च) अपि (विश्वस्य) सर्वस्य चराचरस्य (धारिणी) धारणकर्त्री (पृथिवी) (जायते) उत्पद्यते ॥ ३ ॥

भा०—सर्गारम्भे जीवात्मानं शरीरधारणाय प्रयोजकः सूत्रात्मा ज्योतिर्मयो कारणवायुर्जायते तस्य च प्रेरकः परमात्मास्ति तमेव केचित्महत्तत्त्वनाम्ना व्याप्रियन्ते प्राणशब्देन च जीवनहेतुत्वात्तस्यैवोपादानम्। ततोद्वितीयदशायां महतोऽहङ्कार उत्पद्यते यंमनःशब्देनात्र व्यवहरन्ति। ततः सूक्ष्मभूतानि तन्मात्राख्यानि ततश्च स्थूलभूतानि प्रत्यक्षे दृश्यानि जायन्ते सर्वेषामेषामुत्पादकः परमात्मैवास्ति। अर्थात् तस्य सर्वस्मात्पृथक्त्वेऽपि कार्यकारणरूपेण जगता साकं जन्यजनकसम्बन्धोऽस्त्येव। सत्येतस्मिन्सम्बन्धे न कथंचित्परमेश्वरो जगता सह लिप्यतइति भूतपूर्वः प्रतिषेधः साधुरेवावगन्तव्यः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—इस से पूर्व परमेश्वर का प्राण और इन्द्रियों से पृथक् होना दिखाया है। वह उत्पन्न करने में भी प्राप्त है उस को दिखाने के लिये यह कहते हैं (एतस्मात्) पूर्वोक्त सब प्राण और इन्द्रियों से रहित निमित्तरूप परमात्मा से (प्राणः) अपाना-

दि नाम वाला दश प्रकार का शरीरस्थ वायु (मनः) मन बुद्धि चित्त अहङ्कार (सर्वेन्द्रियाणि) भौतिक पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय (खम्) शब्दगुण वाला आकाश (वायुः) दूसरा तत्त्व-वायु) ज्योतिः) अग्नि (आपः) जल (च) और (विश्वस्य) सब चराचर पदार्थों की (धारिणी) धारण करने वाली (पृथिवी) पृथिवी (जायते) उत्पन्न होती है ॥

भा०—सृष्टि के आरम्भ में जीवात्मा को शरीर धारण करने के लिये प्रेरक ज्योतिःस्वरूप सूत्रात्मा कारण वायु प्रकट होता उस का प्रेरक परमेश्वर है उसी को कोई महत्तत्त्वनाम से कहते हैं तथा कोई तमोनुद कहते हैं जीवन का हेतु होने से उसी का नाम प्राण भी है उस से दूसरी दशा में महान् से अहङ्कार होता है उसी को यहां वेदान्त में मन कहते हैं उस से पीछे पञ्चतन्मात्र सूक्ष्मभूत और इन से पीछे पंच स्थूल भूत प्रत्यक्ष में देखने योग्य उत्पन्न होते हैं। इन सब का उत्पादक परमात्मा ही है अर्थात् उसके सब से पृथक् होने पर भी कार्य कारणरूप जगत् के साथ जन्य जनक वा उत्पाद्य उत्पादक सम्बन्ध है ही। इस सम्बन्ध के होने पर भी परमेश्वर जगत् के साथ कदापि लिप्त नहीं होता इस लिये पहिले प्राणादि से पृथक् कहना भी ठीक ही समझना चाहिये ॥३॥

अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्चवेदाः। वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥४॥

प०—अग्निः। मूर्द्धा। चक्षुषी। चन्द्रसूर्यौ। दिशः। श्रोत्रे

वाक् । विवृताः । च । वेदाः । वायुः । प्राणः । हृदयम् । विश्वम् । अस्य । पद्भ्याम् । पृथिवी । हि । एषः । सर्वभूतान्तरात्मा॥४॥

अ०–इदानीं विराट्रूपस्य वर्णनमाह (अस्य) परमात्मनः समुदितस्यैकीभूतस्य ब्रह्माण्डस्य च (अग्निः) सर्गारम्भे सर्वस्मात्पूर्वमुत्पन्नः सूक्ष्मरूपस्तमोनुदाख्यः (मूर्द्धा) सर्वादित्वाद्वोक्तृशक्तेरुत्तेजकत्वादुत्तमाङ्गइव मुख्यः (चन्द्रसूर्यौ) मध्यान्तरिक्षवर्त्तिनौ सूर्याचन्द्रमसौ (चक्षुषी) चक्षुःस्थानीयौ । एताभ्यामहनि रात्रौ च सर्वान् सर्वं दर्शयति । ब्रह्माण्डश्च सर्वएताभ्यामेव पश्यति। दर्शनहेतुत्वात्तयोश्चक्षुष्ट्वम् (दिशः) पूर्वादयः (श्रोत्रे) दिग्रूपेणावकाशदानात्सर्वं श्रावयति सत्येव चावकाशे ब्रह्माण्डस्थैः शब्दः श्रूयते (विवृताः) विस्तृताः (वेदाः) ऋग्वेदादयः (वाक्) जगदीश्वरो वेदैरेव मनुष्याय कर्त्तव्यमुपदिशति मनुष्याणां च सर्वो वाग्व्यापारो वेदादेव निस्सरति (वायुः, प्राणः) वायुनैव सर्वान् जीवयति वायौ सत्येव सर्वे जीवन्ति (विश्वम्) सर्वं चराचरं वस्तुजातम् (हृदयम्) हृत्स्थानीयं तदाधारत्वात् सर्वस्य परमात्मन्यवस्थितत्वात् (च)

(पद्भ्याम्) पादरूपनिकृष्टसामर्थ्यात् (पृथिवी) जायते। यद्वाऽस्य परमात्मनः पादरूपा निकृष्टस्थानीया पृथिव्यस्ति (हि, एषः, सर्वभूतान्तरात्मा) इत्येवमुक्तप्रकारेण प्रसिद्धः सर्वव्यापी भगवान् सर्वभूतानां प्राणिनामन्तर्मध्ये निरन्तरं प्राप्तोऽस्ति ॥

भा०–नह्यत्र परमात्मनः साकारत्वमुच्यतइति शङ्कनीयम् । परमेश्वरं सर्वव्यापिनं मन्येतइति विधीयते । तत्कथं सर्वव्यापिनं भावयेदित्युपदिश्यते । सर्वशब्दवाच्याश्चाग्न्यादयो येऽत्र संख्यातास्तेषु सर्वेषु पश्येत् । शरीरस्थितं जीवात्मानं यथा नेत्राद्यवयवैः कार्यमारभमाणं भावयन्त्यस्ति कश्चिच्चेतन आत्मास्मिन् कलेवरइति। तथैव ब्रह्माण्डे सूर्यचन्द्रनेत्राद्यवयवोपलक्षितैः कार्यमारभमाणो यः कश्चिदस्ति सएवेश्वरइति विभावयेत् ॥४॥

भावार्थः–अब विराट्रूप का वर्णन करते हैंः–(अस्य) इस परमेश्वर का वा इकट्ठे हुए ब्रह्माण्ड का (अग्निः) सब से पहिले उत्पन्न हुआ सूक्ष्मरूप अन्धकार का नाशक कारणरूप तैजस तत्त्व सृष्टि के आरम्भ में सब का आदि होने और भोगने वाली शक्ति को उत्तेजित करने वाला होने से शिर के तुल्य मुख्य (चन्द्रसूर्यौ) मध्य आकाश में वर्त्तमान चन्द्रमा और सूर्य (चक्षुषी)

नेत्रस्थानी हैं। परमेश्वर इन्ही दोनों के द्वारा दिन और रात्रि में सब को सब वस्तु दिखाता है और सब ब्रह्माण्डस्थ प्राणी इन्ही के प्रकाश द्वारा देखते हैं देखने के हेतु होने से सूर्य चन्द्रमा चक्षु हैं। (दिशः) पूर्वादि दिशा (श्रोत्रे) कान हैं। अवकाश देने से सब को सुनवाता है। अवकाश होने पर ही ब्रह्माण्डस्थ प्राणियों को शब्द सुन पड़ता है (विवृताः) विस्तृत (वेदाः) ऋग्वेदादि वेद जिस की (वाक्) वाणी हैं। परमेश्वर वेदों द्वारा ही मनुष्य के लिये कर्त्तव्य का उपदेश करता है और मनुष्योंका सब वाणी का व्यवहार वेद से ही निकलता है (वायुः) वायु जिस का (प्राणः) प्राण है वायु से ही सब को जीवित रखता और वायु के होने पर ही सब जीते हैं (विश्वम्) सब चराचर वस्तु मात्र जिस का (हृदयम्) हृदय स्थानी है क्योंकि वही सब का आधार उसी परमात्मा में सब की स्थिति है (च) और (पद्भ्याम्) (पृथिवी) जिस के पगरूप निकृष्ट स्थानी पृथिवी है। अथवा उस के पगरूप निकृष्ट सामर्थ्य से पृथिवी उत्पन्न हुई है (हि, एषः, सर्वभूतान्तरात्मा) इस उक्त प्रकार से प्रसिद्ध सब में व्याप्त होने वाला परमात्मा सब प्राणियों के हृदय में निरन्तर प्राप्त हो रहा है॥

भा०—इस मन्त्र में परमेश्वर का साकार होना कहा गया हो ऐसी शङ्का न करनी चाहिये क्योंकि यहां परमेश्वर को सर्वव्यापी माने ऐसा विधान है सो सर्वव्यापी की भावना कैसे करे यह उपदेश किया है। सर्व शब्द वाच्य अग्नि आदि पदार्थ जो इस मन्त्र में गिनाये हैं उन सब में परमेश्वर को देखे। शरीर में रहने वाले जीवात्मा को जैसे नेत्रादि अवयवों से कार्य करते हुए को विचारते हैं कि इस शरीर में कोई चेतन आत्मा है वैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य चन्द्रमा रूप नेत्रादि अवयवों से कार्य चलाता

हुआ जो कोई है वही परमात्मा है ऐसी भावनाकरे ॥४॥

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः सोमात् पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम्। पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात्सम्प्रसूताः ॥५॥

प०—तस्मात्। अग्निः। समिधः। यस्य। सूर्यः। सोमात्। पर्जन्यः। ओषधयः। पृथिव्याम्। पुमान्। रेतः। सिञ्चति। योषितायाम्। बह्वीः। प्रजाः। पुरुषात्। सम्प्रसूताः ॥५॥

अ०—इदानीं कार्यसृष्टावुत्पत्तिप्रकाराः प्रदर्श्यन्ते (तस्मात्) परमेश्वरात्पुरुषात् (अग्निः) भौतिकःस्थूलरूपो जाठरादिरूपश्चोत्पद्यते (यस्य) अग्नेः (सूर्यः) (समिधः) उत्तेजकोऽस्ति सूर्येण हि सर्वं प्रकाश्यते सूर्यप्रकाशेन प्रकाशितात् (सोमात्) चन्द्राग्नितः (पर्जन्यः) वायुदलो मेघः प्रभवति तस्मात् (पृथिव्याम्) पतितात् (ओषधयः) सम्भवन्ति (पुमान्) ता भुक्त्वा पुंस्त्वमापन्नः शरीरी (योषितायाम्) योषाग्नौ (रेतः) वीर्यम् (सिञ्चति) तस्मादपत्यानि जायन्ते। एवम् पूर्णात्परेशात् (बह्वीः) (प्रजाः) मनुष्याद्याः प्राणिनः (सम्प्रसूताः) समुत्पन्नाः॥

भावार्थः—भोक्तृशक्तेरुत्तेजकोऽग्निरेवास्यां सृष्टौ मुख्यः प्रलयेऽन्धकारएव प्रधानः। यत्र कीदृशं किं वा दृश्यमस्ति नास्ति वेति वक्तुमशक्यम्। द्रष्टापि तदानीं न कश्चिदस्ति। सृष्टौ च द्रष्टा दृश्यप्रकारा दर्शनहेतु तैजसमिति त्रयमेव स्पष्टतया प्रतीयते तत्राग्निरेव सर्वस्य सूर्यविद्युदादिरूपेण दर्शकः। एवंभूतस्याग्नेरप्युत्पादकस्य सर्वशक्तिमतोऽनुसन्धानं च मुमुक्षुणा कार्यम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—अब कार्य सृष्टि में उत्पन्न हुए पदार्थों के प्रकार दिखाये जाते हैं (तस्मात्) उस पूर्ण व्याप्त परमेश्वर से (अग्निः) भौतिक स्थूलरूप और जाठरादिरूप अग्नि उत्पन्न होता है (यस्य) जिस अग्नि का (सूर्यः) सूर्य (समिधः) जलने वाले काष्ठों के तुल्य उत्तेजक है क्योंकि सूर्य से ही सब वस्तु प्रकाशित होता है सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित (सोमात्) चन्द्रमारूप शीतल अग्नि से (पर्जन्यः) बादल नामी मेघ उत्पन्न होता उस (पृथिव्याम्) पृथिवी में गिरे हुए मेघ जल से (ओषधयः) ओषधियां उत्पन्न होतीं उन ओषधियों के फलरूप अन्न को खाकर (पुमान्) पुरुषपन को प्राप्त हुआ प्राणी (योषितायाम्) स्त्री रूप अग्नि में (रेतः) वीर्य को (सिञ्चति) छोड़ता है उस से सन्तान मनुष्य उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार (पुरुषात्) पूर्णव्याप्त परमेश्वर से (बह्वीः) बहुत (प्रजाः) मनुष्यादि प्राणी (सम्प्रसूताः) उत्पन्न हुए हैं ॥

भा०—भोगने वाली शक्ति को बढ़ाने वाला मुख्य कर इस सृष्टि में अग्नि ही है। प्रलय में अन्धकार ही मुख्य प्रधान है जहां

कैसा अथवा क्या देखने योग्य है वा नहीं ऐसा कोई नहीं कह सकता। देखने वाला भी उस समय कोई नहीं रहता और रचना होने पर द्रष्टा देखने वाला देखने योग्य वस्तुओं के भेद और देखने का हेतु तैजस प्रकाश ये तीनों स्पष्ट रीति से प्रतीत होते हैं। इस जगत् में अग्नि ही सूर्य वा बिजुली आदि रूप से सब को दिखाने वाला है। इस प्रकार के अग्नि के भी उत्पन्न करने हारे सर्वशक्तिमान् परम पिता परमात्मा का ध्यान वा विचार मुमुक्षु पुरुष को करना चाहिये ॥५॥

तस्मादृचः साम यजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च। संवत्सरं च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ॥ ६ ॥

प०-तस्मात्। ऋचः। साम। यजूंषि। दीक्षाः। यज्ञाः। च। सर्वे। क्रतवः। दक्षिणाः। च। संवत्सरम्। च। यजमानः। च। लोकाः। सोमः। यत्र। पवते। यत्र। सूर्यः ॥ ६ ॥

अ०-सम्प्रसूताइति पूर्वमन्त्रादनुवर्त्तते (तस्मात्) आदिपुरुषाज्जगदीश्वरात् (ऋचः) नियताक्षरपादविशिष्टा ऋग्वेदमन्त्राः (साम) सामवेदः (यजूंषि) अनियताक्षरपादावसानानि यजुर्वेदवाक्यानि (दीक्षाः) ब्रह्म चर्याश्रमादिचिह्नधारणविशेषाः (च) अपि (यज्ञाः) अग्निहोत्रादयः सर्वे दर्शपौर्णमासाद्यो यज्ञाः (सर्वे) (क्रतवः)

अग्निष्टोमवाजपेयादयः (च) अपि (दक्षिणाः) सर्वं सुवर्णादि धनं यद्यज्ञे ऋत्विगादिभ्यो दीयते (संवत्सरम्) उपलक्षणमेतत् कालविभागस्य (च) (यजमानः) यज्ञस्यानुष्ठाता (यत्र) (सोमः) चन्द्रमाः (यत्र) च (सूर्यः) (पवते) स्वस्वकिरणैर्वस्तूनि लोकेषु पुनाति ते (लोकाः) पृथिवीनक्षत्रादयः (यत्र कर्मानुगो यजमानो भ्रमति) उत्पन्नाः ॥

भा०—कर्मफलमनाश्रितेनाग्निहोत्रादियज्ञानुष्ठात्रा यजमानेन स्वकल्याणाय भावनीयो विषयउपदिश्यते—कर्मोपासनाज्ञानेषु पठितव्या वेदमन्त्रा यज्ञानामितिकर्त्तव्यता च परमात्मनैव वेदद्वारोपदिष्टा। दक्षिणाद्यर्थानि धनानि समयविभागो यत्र यज्ञोऽनुष्ठातव्यः। यज्ञस्य कर्त्ता कर्म साधकतममधिकरणं फलं च सर्वं तेनैव सृष्टं तस्यैव सर्वमिदं सएव सर्वस्याधिष्ठाताऽहंतु तस्याज्ञापालको भृत्यवत्कर्त्ता। दक्षिणादिकमहं च सर्वं तस्यैवेति ध्यायताभिमानस्त्याज्यइतिशम् ॥६॥

भावार्थः—पूर्व मन्त्र से यहां (सम्प्रसूताः) पद की अनुवृत्ति आती है (तस्मात्) उस आदि पुरुष परमेश्वर से (ऋचः) जिन में अक्षर और पाद नियत हैं कि एक पाद में इतने अ-

क्षर हों और एक मन्त्र में इतने पाद हों ऐसे ऋग्वेद के मन्त्र (साम) सामवेद (यजूंषि) जिन के अक्षर पादों की समाप्ति नियत नहीं ऐसे विषमछन्द युक्त यजुर्वेद के मन्त्र (दीक्षाः) ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के भिन्न २ चिह्न धारण करने (च) और (यज्ञाः) अग्निहोत्रादि महायज्ञ (च) तथा (सर्वे) सब (क्रतवः) अग्निष्टोम वाजपेयादि यज्ञ (च) और (दक्षिणाः) सब सुवर्णादि धन जो यज्ञ में पुरोहितादि को दिया जाता है (संवत्सरम्) वर्ष मास पक्ष आदि काल का विभाग (च) और (यजमानः) यज्ञ करने वाला तथा (यत्र) जहां (सोमः) चन्द्रमा (यत्र, च) और जहां (सूर्यः) सूर्य लोक (पवते) अपने २ किरणों से लोकों में वस्तुओं को प्रकाशित करते वा शुद्ध करते हैं वे (लोकाः) पृथिवी और नक्षत्रादि लोक उत्पन्न हुए हैं कि जिन लोकों में अपने कर्मों के अनुसार यजमान भ्रमता है ॥

भा०-कर्म के फल का आश्रय न किये हुए अग्निहोत्रादि यज्ञ करने वाले यजमान को अपने कल्याण के लिये जैसा विचार करना चाहिये वह विषय अब कहते हैं। कर्म उपासना और ज्ञानकाण्डों में पढ़ने योग्य वेदमन्त्र परमेश्वर ने ही वेद द्वारा उपदेश किये हैं । दक्षिणादि के लिये धन, समय का विभाग जिस में यज्ञ किया जाय इत्यादि प्रकार यज्ञ का करने वाला, कर्म, साधन, आधार और फल सब परमेश्वर ने ही रचा उसी का यह सब है वही सब का स्वामी है मैं तो उस की आज्ञा का पालक नौकर के तुल्य करने वाला हूं दक्षिणादि तथा मैं सब उसी के हैं ऐसा ध्यान करते हुए यजमान को अभिमान छोड़ना चाहिये ॥६॥

तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः
साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि ।

प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥७॥

प०—तस्मात् । च । देवाः । बहुधा । सम्प्रसूताः । साध्याः । मनुष्याः । पशवः । वयांसि । प्राणापानौ । व्रीहियवौ । तपः । च । श्रद्धा । सत्यम् । ब्रह्मचर्यम् । विधिः । च ॥७॥

अ०—(तस्मात्, च) परमेश्वरादेव (बहुधा) बहुप्रकारका विलक्षणबुद्धयो नानाविद्यासु निष्णाताः पूर्वजन्मानुभूतशुभकर्मजन्यसंस्कारसंस्कृतप्रज्ञाः सिद्धाः (देवाः) निर्मलनिकाया गर्भादिदोषेभ्यः पृथग्भूता मैथुनसृष्टेः प्राक् (सम्प्रसूताः) उत्पन्नाः (साध्याः) वर्त्तमाने जन्मनि शुभकर्मानुष्ठानैः सिद्धिमाप्तुमर्हाश्च देवान्तराः (मनुष्याः) विशिष्टविद्याबुद्धिविहीनाः (पशवः) गवादयः (वयांसि) पक्षिणः (प्राणापानौ) जीवनहेतू उच्छ्वासनिःश्वासौ (व्रीहियवौ) हविष्यार्थावन्नविशेषौ (तपः) शरीरसंस्कारार्थं कर्माङ्गं चान्द्रायणादिव्रतधारणं च (च) (श्रद्धा) यस्य गुणस्याश्रयेण प्रज्ञायामास्तिक्यं कर्मणि प्रवृत्तिरुत्साहश्चित्तप्रसादश्च स श्रद्धारूपो गुणः (सत्यम्) यथाभूतस्वार्थस्य कथनं प्रियं च (ब्रह्मचर्यम्) उपस्थेन्द्रियनिग्रहः (विधिः, च) आज्ञा च—इदमित्थं कर्त्तव्यमिति ॥

भा०-मनुष्येष्वनेकभेदाः सन्ति तत्र देवाः पितरो मनुष्या इति त्रयः प्रधाना भेदाः। तत्र देवा द्विविधाः सिद्धाः साध्याश्च पूर्वजन्मानुभूतशुभकर्मसंस्कारैः शुद्धा धीमन्तः शीघ्रं प्राप्तविद्या जन्मत एव धर्मात्मानः सिद्धाः। वर्त्तमानजन्मनि क्रियमाणकर्मसिद्धिं प्राप्तुमर्हाः साध्याः पितरो ज्ञानिनो मनुष्याः साधारणा विशिष्टविद्याबुद्धिरहितास्ततो विरुद्धाः परापकारायोद्यतास्तस्करादिनामभिः प्रसिद्धा असुरादिनामकाः। इत्यादयः पश्वादयश्च सर्वे सर्गारम्भे परमात्मत एवोत्पद्यन्ते ॥७॥

भाषार्थः-(तस्मात्, च) उसी परमेश्वर से (बहुधा) बहुत प्रकार के विलक्षण २ बुद्धि वाले अनेक प्रकार की विद्याओं में निपुण पूर्वजन्म में अनुभव किये अच्छे कर्मों के सेवन से संचित हुए शुभ संस्कारों से शुद्ध की गई जिन की बुद्धि है वे इष्टसिद्धि को प्राप्त (देवाः) निर्मलशरीरों वाले गर्भादि में होने वाले दोषों से रहित मैथुनी सृष्टि से पहिले (सम्प्रसूताः) उत्पन्न हुए और (साध्याः) वर्त्तमान जन्म में शुभ कर्मों के सेवन से इष्ट सिद्धि को प्राप्त होने योग्य द्वितीय प्रकार के देव होते हैं और तीसरे (मनुष्याः) विशेष विद्या बुद्धि रहित (पशवः) गौ आदि पशु (वयांसि) पक्षी (प्राणापानौ) जीवन के हेतु ऊपर और नीचे को चलने वाले वायुरूप प्राण (व्रीहियवौ) होमने योग्य धान

और यव अन्न (तपः) शरीर की शुद्धि के लिये चान्द्रायणादि व्रत धारणरूप एक कर्म (च) और (श्रद्धा) जिस गुण के शरीर में होने से बुद्धि में आस्तिकपन, विश्वास, कर्म में प्रवृत्ति, उत्साह, और चित्त की प्रसन्नता होती है वह श्रद्धारूप गुण (सत्यम्) जैसा वस्तु हो वैसा तथा प्रिय वचन कहना (ब्रह्मचर्यम्) उपस्थ इन्द्रिय को वश में रखना रोकना (विधिः, च) और आज्ञा कि यह काम इस प्रकार करना चाहिये यह सब उसी परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है ॥

भा०—मनुष्यों में अनेक भेद हैं उन में तीन भेद मुख्य हैं देव, पितृ और मनुष्य, देव दो प्रकार के होते हैं सिद्ध तथा साध्य। पूर्व जन्म में सेवन किये शुभ कर्मों के संस्कारों से शुद्ध बुद्धिमान् शीघ्र ही विद्या को प्राप्त होने वाले और जन्म से ही धर्मात्मा सिद्ध देवता हैं और वर्त्तमान जन्म में क्रियमाण कर्मों से सिद्धि को प्राप्त होने योग्य साध्य कहाते हैं। दूसरे ज्ञानी मनुष्य पितर और विशेष विद्या बुद्धि रहित साधारण लोग मनुष्य हैं तथा इन से विरुद्ध पराई हानि करने को उद्यत तस्करादि नामों से प्रसिद्ध असुरादि नाम वाले होते हैं इत्यादि मनुष्य और पशु आदि सब सृष्टि के आरम्भमें परमात्मा से ही उत्पन्न हुए हैं ॥७॥

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः। सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्तसप्त ॥ ८ ॥

प०—सप्त। प्राणाः प्रभवन्ति। तस्मात्। सप्तार्चिषः। समिधः।

सप्तहोमाः । सप्त । इमे । लोकाः । येषु । चरन्ति । प्राणाः । गुहाशयाः । निहिताः । सप्तसप्त ॥ ८ ॥

अ०—(सप्तार्चिषः) सप्तविधान्यर्चींषि स्वस्वविषयबोधकानि येषां ते (सप्तहोमाः) सप्तविधा होमा आदानानि विषयग्रहणानि येषां ते (सप्त) (प्राणाः) बाह्यविषयग्रहणशक्तयः शिरस्था द्वे द्वे चक्षुःश्रोत्रनासिकानामेका च मुखस्य सप्तैव छिद्राण्यपि सन्ति (तस्मात्) आदिपुरुषात् (प्रभवन्ति उत्पद्यन्ते तथा (समिधः) इन्द्रियगोलकस्थप्राणशक्तीनां काष्ठान्यग्नेरिवोबोद्बुधकाः सप्तविधा विषयाः (इमे) प्रत्यक्षानि (लोकाः) दर्शनहेतूनि (सप्त) इन्द्रियछिद्राणि सन्ति (येषु) लोकेषु (गुहाशयाः) ध्यानादिसमये निद्रायां च गुहायां हृदयेऽन्तःकरणे शेरतइति गुहाशयाः (प्राणाः) जाग्रदादिसमये (चरन्ति) चलन्ति विचरन्ति । एवं भूताः प्राणाः परमात्मना प्रतिशरीरं (सप्तसप्त) (निहिताः) स्थापिताः ॥

भा०—सूक्ष्मा ज्ञानेन्द्रियशक्तयस्तासां गोलकानि विषयादयश्च सर्वं परमेश्वरेणैव सृष्टं प्रतिशरीरे स्थापितं च येनास्य जगतः सर्वो व्यवहारश्चलति । अतः सएव सर्वस्याध्यक्षः सर्वैर्जिज्ञासुभिरुपासनीयः ॥ ८ ॥

भावार्थः-(सप्तार्चिषः) सात प्रकार की अपने २ विषय को जताने वाली किरणें जिन की हैं तथा (सप्तहोमाः) सात प्रकार की विषयग्रहण की शक्ति जिन में हैं ऐसे (सप्त) सात (प्राणाः) शिर में रहने वाली-दो नेत्रों की, दो कान की, दो नासिका की और एक मुख की ये सात छिद्ररूप वाहिरी विषय को ग्रहण करने वाली शक्ति (तस्मात्) उस आदि पुरुष परमात्मा से (प्रभवन्ति) उत्पन्न होती हैं तथा (समिधः) इन्द्रियों के गोलकों में रहने वाली प्राण की शक्तियों के अग्नि को काष्ठों के तुल्य उत्तेजित करने वाले सात प्रकार के विषय तथा (इमे) ये प्रत्यक्ष (लोकाः) देखने के हेतु (सप्त) इन्द्रियों के सात छिद्र हैं कि ये (येषु) जिन में (गुहाशयाः) ध्यानादि वा निद्रा के समय में अन्तःकरण में सोने वाले (प्राणाः) प्राण जाग्रत् आदि दशा में (चरन्ति) विचरते हैं ऐसे प्राण परमात्मा ने प्रत्येक शरीर में (सप्तसप्त) सात २ (निहिताः) स्थापित किये हैं॥

भा०-ज्ञानेन्द्रियों की सूक्ष्म शक्तियां उन के गोलक और उन के विषयादि सब परमेश्वर ने ही रचे और प्रत्येक शरीर के साथ स्थापित किये हैं जिस से इस जगत् का सब व्यवहार चलता है इस कारण वही सब का अध्यक्ष और सब जिज्ञासुओं को उपासना करने योग्य है ॥ ८ ॥

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मा-
त्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः। अत-
श्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष
भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥९॥

प०-अतः। समुद्राः। गिरयः। च। सर्वे। अस्मात्। स्यन्दन्ते।

सिन्धवः । सर्वरूपाः । अतः । च । सर्वाः । ओषधयः । रसः । च । येन । एषः । भूतैः । तिष्ठते । हि । अन्तरात्मा ॥ ९ ॥

अ०-(अतः) अस्मादुक्तात्परमेश्वरादेव (सर्वे) (समुद्राः) क्षारादिनामकाः (च) (गिरयः) हिमालयादयः पर्वताः (अस्मात्) परमात्मतएव (सर्वरूपाः) पुरस्ताद्दक्षिणत उत्तरतो वा गामिन्यः (सिन्धवः) गङ्गाद्या नद्यः (अतः,च) अस्मादेवेश्वरान्निमित्तात् (सर्वाः, ओषधयः) यवाद्याः समुत्पन्नास्तासां परिणतस्तन्मूलफलादिभक्षणेन निष्पन्नः (रसः,च) रसोऽपि परमात्मनिमित्तादेव जातोऽस्ति (येन) रसेन धातुना परिणतैः (भूतैः) पञ्चभूतमयैर्मांसादिधातुभिः (एषः) ज्ञानपूर्वकक्रियाकरणेन प्रत्यक्षः (अन्तरात्मा) अन्तः-हृदयावकाशे शरीरमध्येऽतति निरन्तरं प्राप्नोति बुद्धिवृत्तिभिर्मनसा वा रमतइति-अन्तरात्मा सलिङ्गशरीरो जीवात्मा (हि) निश्चयेन (तिष्ठते) तत्सर्वं परमात्मतएवोत्पन्नमिति सम्बन्धः ॥

भा०-परमात्मानं जिज्ञासुभिरेवमपि तस्यानुसन्धानं कार्यम् । प्रत्यक्षे दृश्यमानं पर्वतनदीसमुद्रजलान्नादिकं सर्वं प्राणिनामुत्पत्तिस्थिति हेतुकं यस्मान्निमित्तादुत्पन्नं सएवास्माभिरुपा-

स्यः । नहि कार्यं किमप्यकर्त्तृकं भवितुमर्हति तस्माद्योऽस्य कर्त्ता स एवेश्वरइति भावनीयम्॥९॥

भावार्थः—(अतः) इस उक्त परमेश्वर से ही (सर्वे) सब (समुद्राः) खारी आदि समुद्र (च) और (गिरयः) हिमालय आदि पहाड़ (अस्मात्) इस परमेश्वर से ही (सर्वरूपाः) पूर्व दक्षिण वा उत्तर को चलने वाली सब प्रकार की गङ्गादि नदियां (अतश्च) और इसी परमेश्वररूप निमित्त से (सर्वाः) सब (ओषधयः) ओषधियां उत्पन्न हुई हैं उन ओषधियों के मूल वा फलरूप अन्न आदि के भक्षण से परिणाम को प्राप्त होकर सिद्ध हुआ (रसः, च) रस भी परमेश्वर ने ही उत्पन्न किया है (येन) जिस परिणाम को प्राप्त हुए धातुरूप रस से (भूतैः) बनने वाले पंचभूत रूप मांसादि धातुओं से (एषः) यह ज्ञान पूर्वक क्रिया करने से प्रत्यक्ष (अन्तरात्मा) शरीर के बीच हृदयरूप अवकाश में प्राप्त होने वाला बुद्धि की वृत्तियों वा मन के साथ रमण करता हुआ लिङ्ग शरीर के सहित जीवात्मा (हि) निश्चय करके (तिष्ठते) स्थित होता शरीर में ठहरता है। यह सब परमात्मा से ही उत्पन्न हुआ है ॥

भा०—परमेश्वर को जानने की इच्छा रखने वाले पुरुषों को इस निम्न लिखित प्रकार भी उस का अनुसन्धान करना चाहिये—प्रत्यक्ष में दीख पड़ने वाले पर्वत नदी समुद्र जल और अन्नादि सब पदार्थ [जिन से प्राणधारियों के शरीरों की उत्पत्ति स्थिति होती है] जिस निमित्त कारण परमेश्वर से उत्पन्न हुए हैं उसी की उपासना हम को करनी चाहिये क्योंकि बनावटी वस्तु कोई बिना बनाने वाले के नहीं बन सकता। इस लिये जो इस सब प्रत्यक्ष बनावटी जगत् का कर्त्ता है वही ईश्वर है ऐसी भावना करनी चाहिये।

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम् । एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य ! ॥१०॥

प०—पुरुषे । एव । इदम् । विश्वम् । कर्म । तपः । ब्रह्म । परामृतम् । एतत् । यः । वेद । निहितम् । गुहायाम् । सः । अविद्याग्रन्थिम् । विकिरति । इह । सोम्य ॥ !

अ०—अस्या उपनिषदः प्रारम्भे तृतीयमन्त्रे शौनकेनाङ्गिरसं प्रति पृष्टम् । ततोऽङ्गिरा एतावदुक्त्वोपसंहरति—हे (सोम्य) प्रिय शिष्य शौनक! (कर्म) क्रियामात्रम् (तपः) ज्ञानम् (परामृतम्) परं प्रकृष्टमुत्तमं च तदमृतमविनाश्यनादि नित्यम् (ब्रह्म) वेदः (इदम्) प्रत्यक्षे दृश्यमानं जगच्च (विश्वम्) सर्वम् (पुरुषएव) पूर्णे व्याप्ते परमात्मन्येवास्ति सएव सर्वस्याधारः । अर्थादीदृशो महान् सोऽस्ति यस्य मध्येऽनन्तत्वेन प्रतीयमानमपि जगत्प्रविष्टमेकदेशिवद्वर्त्तते । यद्येवं बृहदस्ति तर्हि कथं ज्ञातुमर्हइत्याह—(यः) पुरुषः (एतत्) उक्तं ब्रह्म (गुहायाम्) स्वस्य बुद्धौ (निहितम्) स्थितम् (वेद) जानाति (सः) (अविद्याग्रन्थिम्) अविद्याया बन्धनहेतुकाया

रज्जोरिव ग्रन्थिम् (इह) संसारे (विकिरति) छिनत्ति ॥

भा०—यद्यपि परमेश्वरः सर्वस्मान्महानस्ति, नास्ति तस्मादधिकं महत्तरं तत्तुल्यं वा किमपि तथापि सर्वस्मिन् प्रविष्टो निर्मलदर्पणे रूपमिव शुद्धान्तःकरणे सत्येव जिज्ञासुनोपलभ्यते नहीतरस्ततो भ्रमितव्यम् । उपायमनुतिष्ठता जिज्ञासुना स्वस्यैव हृदये भावनीयः ॥१०॥

भावार्थः—इस मुण्डक उपनिषद् के प्रारम्भ के तृतीय मन्त्र में शौनक ऋषि ने अङ्गिराऋषि के प्रति पूछा है तिस पर अङ्गिरा इतना उपदेश कह कर अन्त में दिखाते हैं कि हे (सोम्य) प्रिय शिष्य शौनक (कर्म) क्रियामात्र (तपः) ज्ञान (परामृतम्) सब से उत्तम और अविनाशी नित्य (ब्रह्म) वेद तथा (इदम्) यह प्रत्यक्ष में दीख पड़ने वाला (विश्वम्) सब जगत् (पुरुषएव) पूर्णव्याप्त परमात्मा में ही ठहरा हुआ है वही सब का आधार है । अर्थात् वह ऐसा बड़ा है जिस के बीच में अनन्त प्रतीत होने वाला जगत् भी एक देशी के तुल्य प्रविष्ट होरहा है । जब ऐसा बड़ा है तो हम अल्प सामर्थ्य वाले कैसे उस को जान सकते हैं ? सो कहते हैं (यः) जो (एतत्) इस उक्त परमेश्वर को (गुहायाम्) अपनी बुद्धि में (निहितम्) स्थित (वेद) जानता है (सः) वह (अविद्याग्रन्थिम्) बन्धन की हेतु रस्सी के तुल्य अविद्या की गांठ को (इह) इस जगत् में (विकिरति) काट देता है ॥

भा०—यद्यपि परमेश्वर सब से बड़ा है उस से अधिक बड़ा वा उस के तुल्य कोई नहीं है तो भी जगत् में प्रविष्ट निर्मल दर्पण

में रूप दीखने के तुल्य शुद्ध अन्तःकरण होने पर ही जिज्ञासु पुरुष को प्राप्त होता है । इधर उधर भ्रमणा नहीं चाहिये । उपाय करने वाले को अपने अन्तःकरण में ही ध्यान करना चाहिये ॥ १० ॥

इति द्वितीय मुण्डके प्रथमखण्डः समाप्तः ॥

आविः सन्निहितं गुहाचरन्नाम महत्पदमत्रैतत्समर्पितम्। एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ॥ १ ॥

आविः । सन्निहितम् । गुहाचरत् । नाम । महत् । पदम् । अत्र । एतत् । समर्पितम् । एजत् । प्राणत् । निमिषत् । च । यत् । एतत् । जानथ । सदसत् । वरेण्यम् । परम् । विज्ञानात् । यत् । वरिष्ठम् । प्रजानाम् ॥ १ ॥

अ०-प्रथमखण्डे यस्माद्ब्रह्मण उत्पत्तिदर्शिता तस्यात्र द्वितीयखण्डे स्वरूपं निरूप्यते (आविः) योगिनां ज्ञानिनां हृदये आविर्भूतम् (सन्निहितम्) सदा तेषां समीपस्थम् (गुहाचरत्) ज्ञानिनां बुद्धिवृत्तिषु विद्यमानम् (नाम) प्रसिद्धम् (महत्) (पदम्) प्राप्तुं योग्यम् (प्रजानाम्) राज्ञोपेक्षयेव निकृष्टानां लौकिकविज्ञानवतां बुद्धिमतां मनुष्याणाम् (विज्ञानात्) शिल्पज्ञानात्

(परम्) दूरमविज्ञातम् (वरिष्ठम्) वरेषूत्तमेषूत्तमतरमतएव (वरेण्यम्) ज्ञातुमभिलषितव्यम् (सत्) ज्ञानिनां बुद्धौ विद्यमानम् (असत्) लौकिकसुखभोगासक्तानां प्रज्ञायामविद्यमानमेवंभूतं यद्ब्रह्मास्ति। हे मनुष्याः (एजत्) कम्पमानं वृक्षादिकम् (प्राणत्) प्राणक्रियाविशिष्टं मनुष्य पश्वादिकं प्राणिमात्रम् (निमिषत्) प्राणक्रियारहितं मरणावसरं प्राप्तम् (च) अनिमिषदपि मृतं मृत्पाषाणादिकं च (यत्,एतत्) सर्वं जगद्यूयम् (जानथ) जानीथ तत् (एतत्) (अत्र) यस्मिन् ज्ञानिभिः स्वान्तःकरणएवोपलभ्यमाने ब्रह्मणि (समर्पितम्) संलग्नम् (अस्य) जगतस्तदेवाधाररूपमस्ति॥

भा०-यस्मिन् ब्रह्मणीदं जगदुत्पत्तिस्थितिप्रलयदशात्रये तिष्ठति तदेवं बृहत्सदपि सर्वत्र व्याप्तत्वाद्ज्ञानिभिः स्वहृदये प्रकाशमानमानन्दस्वरूपं योगाभ्यासेनोपलभ्यते। अज्ञैश्च जन्मसहस्रेष्वपि प्राप्तुमशक्यम्। ब्रह्मज्ञान्यपेक्षया लौकिका विद्वांसोऽप्यज्ञानिनएव तेषां तीव्राऽपि बुद्धिर्ब्रह्मणि न गच्छति॥ १॥

भावार्थः-प्रथमखण्ड में जिस ब्रह्म से उत्पत्ति दिखाई है उसी

का इस दूसरे खण्ड में स्वरूप निरूपण करते हैं (आविः) ज्ञानी योगी लोगों के हृदय में प्रकट स्वरुप (सन्निहितम्) सदा उन के समीपस्थ (गुहाचरत्) ज्ञानियों की बुद्धि की वृत्तियों में विद्यमान (नाम) प्रसिद्ध (महत्) सब से बड़ा (पदम्) प्राप्त होने योग्य (प्रजानाम्) जैसे राजा की अपेक्षा प्रजा निर्बल वा नीच होती वैसे परमेश्वर की अपेक्षा नीची दशा में स्थित सब मनुष्यों के (विज्ञानात्) शिल्प सम्बन्धी ज्ञान से (परम्) दूर (वरिष्ठम्) सब उत्तम पदार्थों में अत्यन्त उत्तम इसी कारण (वरेण्यम्) जिस को जानने की अभिलाषा करनी चाहिये (सत्)ज्ञानी लोगों की बुद्धि में विद्यमान (असत्) लौकिक सुख भोग में आसक्त मनुष्यों की बुद्धि में अविद्यमान जो ब्रह्म है। हे मनुष्यो (एजत्) वायुद्वारा हिलने वाले वृक्ष घासादि (प्राणत्) प्राण की क्रिया श्वास वाले मनुष्य पशु आदि प्राणी मात्र और (निमिषत्) प्राण चेष्टा से रहित मरण को प्राप्त (च) तथा मरे हुए वा मट्टी पत्थर आदि जड़ पदार्थ (यत्,एतत्) जो इस सब जगत् को तुम लोग (जानथ) जानते हो वह (एतत्) यह सब (अत्र) इस ज्ञानियों के अपने ही अन्तःकरण में प्राप्त होने योग्य ब्रह्म में (समर्पितम्) संयुक्त स्थित है अर्थात् इस जगत् का वही ब्रह्म आधारस्वरूप है॥

भा०-जिस ब्रह्म में यह जगत् उत्पत्ति स्थिति प्रलय तीनों दशा में स्थित रहता वह ऐसा बड़ा होने पर भी सर्वत्र व्याप्त होने से ज्ञानी लोगों को योगाभ्यास द्वारा अपने हृदय में प्रकाशमान आनन्दस्वरूप ब्रह्म प्राप्त होता है। अज्ञानी लोग हजारों जन्मों में भी उस को प्राप्त नहीं हो सकते। और ब्रह्मज्ञानी वा जीवन्मुक्त की अपेक्षा लौकिक विद्वान् भी अज्ञानी ही माने जाते हैं उन की लोक में तीव्र बुद्धि भी ब्रह्म में नहीं पहुंचती ॥ १ ॥

यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु यस्मिन्

लोका निहिता लोकिनश्च । तदेत-
दक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः ।
तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य
विद्धि ॥ २ ॥

प०—यत् । अर्चिमत् । यत् । अणुभ्यः । अणु । यस्मिन् । लोकाः । निहिताः । लोकिनः । च । तत् । एतत् । अक्षरम् । ब्रह्म । सः । प्राणः । तत् । उ । वाक् । मनः । तत् । एतत् । सत्यम् । तत् । अमृतम् । तत् । वेद्धव्यम् । सोम्य । विद्धि ॥ २ ॥

अ०—पुनस्तदेवोच्यते हे (सोम्य) प्रिय शिष्य (यत्) (अर्चिमत्) सर्वप्रकाशहेतुत्वात् दीप्तिमत् (यत्) (अणुभ्यः) सूक्ष्मेभ्यः प्रकृत्यादिभ्यः (अणु) सूक्ष्मतरम् (यस्मिन्) ब्रह्मणि (लोकाः) दृष्टिपथगताः पृथिव्यादयः(लोकिनः) लोका येषां सन्ति ते तत्र वस्तारो मनुष्यादयः प्राणिनः (निहिताः) स्थिताः (तत्,एतत्,ब्रह्म) (अक्षरम्) अविनश्वरम् (सः) (प्राणः) सर्वस्य जीवनहेतुः (तत्,उ) तदेव (वाङ्मनः) वाचो वेदरूपस्य मननशक्तेश्च निमित्तम् (तत्,एतत्) ब्रह्म (सत्यम्) सदैकरसतया विद्यमानम् (तत्,अमृतम्) न कदापि म्रियते (तत्,वेद्धव्यम्) मनसा ताडयम् । मनस्तस्मिन् चालयितव्यम् । एवं प्रकारेण

(विद्धि) जानीहि ॥

भा०—यथाऽत्यन्तसूक्ष्मस्य लक्ष्यस्य वेधनं कठिनं भवति तथैव सर्ववस्तुमात्रात्सूक्ष्मतरस्य ब्रह्मणो ज्ञानं क्लिष्टमस्ति तत्र मुहुर्मुहुर्मनश्चालनेन कर्त्तव्यं नहि तत्सुगमतया कश्चिज्ज्ञातुं शक्नोति ॥

भाषार्थः—फिर उस विषय को कहते हैं—हे (सोम्य) प्रिय शिष्य शौनक (यत्) जो (अर्चिमत्) सब सूर्यादि प्रकाशक पदार्थों का कारण होने से दीप्तिवाला (यत्) जो (अणुभ्यः) प्रकृति आदि सूक्ष्मपदार्थों से भी (अणु) अतिसूक्ष्म (यस्मिन्) जिस ब्रह्म में (लोकाः) दृष्टि में आने वाले पृथिव्यादिलोक (च) और (लोकिनः) पृथिव्यादि में बसने वाले मनुष्यादि प्राणी (निहिताः) स्थित हैं (तत्, एतत्, ब्रह्म) वह यह ब्रह्म (अक्षरम्) अविनाशी (सः) वह (प्राणः) सब का जीवन हेतु (तत्, उ) वही (वाङ्मनः) वेदरूप वाणी और मननशक्ति का निमित्त (तत्, एतत्) वही ब्रह्म (सत्यम्) सदा एकरस रूप से विद्यमान (तत्, अमृतम्) वह कभी नहीं मरता (तत्) उस (वेद्धव्यम्) मन से ताड़ित करना चाहिये अर्थात् उस की ओर बार २ मन लगाओ इस प्रकार से उस को (विद्धि) जानो ॥

भा०—जैसे अति सूक्ष्म लक्ष्य का वींधना कठिन है वैसे सब वस्तुमात्र से अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्म का ज्ञान भी बहुत कठिन है उस में बार २ मन को चला कर ज्ञान करना चाहिये क्योंकि सुगम रीति से ब्रह्म को कोई नहीं जान सकता ॥ २ ॥

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासा निशितं सन्धीयत। आयम्य

तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ॥ ३ ॥

प०—धनुः । गृहीत्वा । औपनिषदम् । महास्त्रम् । शरम् । हि । उपासा । निशितम् । सन्धीयत । आयम्य । तद्भावगतेन । चेतसा । लक्ष्यम् । एव । तत् । अक्षरम् । सोम्य । विद्धि ॥ ३ ॥

अ०—इदानीमङ्गिरा ऋषिः शौनकं संबोधयन्नुक्तं वेद्धव्यं च स्पष्टयन्पुनराह—हे (सोम्य) प्रियवर शौनक जिज्ञासुर्जनः (औपनिषदम्) उपनिषत्सु ब्रह्मविद्योपपादकनिबन्धेषु भवं वक्ष्यमाणम् (महास्त्रम्) महच्च तदस्त्रम् (धनुः) धनुरिव लक्ष्यप्राप्तिहेतुकम् (गृहीत्वा) स्वीकृत्य तस्मिन्धनुषि (उपासा) ध्येयस्य ब्रह्मणो नित्यमभिध्यानेन (निशितम्) तीक्ष्णीकृतं (शरंहि) तीक्ष्णबुद्धिरूपं बाणमेव (सन्धीयत) सन्धानं कुर्यात्। लक्ष्यब्रह्माभिमुखं योजयेदित्यर्थः (तद्भावगतेन) तस्य ब्रह्मणो भावो भावना तस्यां लग्नेन (चेतसा) मनसा (आयम्य) धनुराकृष्य (लक्ष्यम्) विध्येदिति शेषः। हे शौनक! एतेन कर्म्मणा (तदेव) पूर्वोक्तम् (अक्षरम्) अविनश्वरं ब्रह्मैव(विद्धि) जानीहि ॥

भा०—लौकिकलक्ष्यवद् ब्रह्मापि ताडितं खण्डितं वा भवेदिति माभूत्कस्यचिद्व्यामोहइति

मन्त्रान्तःस्थेनाक्षरशब्देन ध्वन्यते। तथा लौकिकोऽयं दृष्टान्तो जिज्ञासोः सुलभतया बोधार्थः। यथा व्याधा लक्ष्ये बुद्धिवृत्तिमेकीकृत्य तन्मनसो भूत्वा विध्यन्ति स्वल्पेऽपि प्रमादे वेधनमसम्भवम्। एवमत्रापि जिज्ञासुः सर्वतो बुद्धिवृत्तिमाकृष्य ध्येये ब्रह्मण्येव मुहुर्मुहुर्निवेशयेत्। एवं कृते दुःखाद्विमुच्यते ॥ ३ ॥

भाषार्थः—अब अङ्गिरा ऋषि शौनक को जनाकर उक्त लक्ष्य को प्रगट करते हुए कहते हैं कि हे (सोम्य) प्रियवर शौनक जिज्ञासु पुरुष को योग्य है कि (औपनिषदम्) ब्रह्मविद्या सम्बन्धी पुस्तकों में जिस का विशेष व्याख्यान है उस अगले मन्त्र में कहे (महास्त्रम्) बड़े शस्त्र (धनुः) धनुष के तुल्य लक्ष्य के प्राप्त होने में हेतु वाचक शब्द को (गृहीत्वा) लेकर उस शब्दरूप धनुष में (उपासा) उपासना से (निशितम्) तीक्ष्ण किये (शरं हि) बुद्धिरूप बाण ही को संयुक्त करे (तद्भावगतेन) उसी ब्रह्म के ध्यान में लगे हुए (चेतसा) मन से (आयम्य) वाचकरूप धनुष को तान कर (लक्ष्यम्) लक्ष्य को प्राप्त होवे। हे शौनक इस प्रकार करने से (तदेव) उसी (अक्षरम्) अविनाशी परमात्मा को (विद्धि) जानो॥

भा०—इस मन्त्र के अन्त में अक्षर शब्द कहने से यह भी प्रयोजन निकलता है कि लक्ष्य के तुल्य परमेश्वर भी मारा जाता हो ऐसी शङ्का किसी को न हो क्योंकि वह विनाशी है। लौकिक दृष्टान्त का प्रयोजन यही है कि जिज्ञासु को सुगम रीति से बोध हो जावे। जैसे बहेलिया लोग लक्ष्य में बगुला के तुल्य चित्त को लगाकर प्रवृत्त होते हैं थोड़ा भी प्रमाद करें तो उन का कार्य

सिद्ध होना असम्भव है। इसी प्रकार यहां भी जिज्ञासु मनुष्य अपनी बुद्धि को सब ओर से रोक कर उपास्य ब्रह्म में ही लगावे ऐसा करने में दुःख से छूट जाता है ॥३॥

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्ल-क्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्त न्मयो भवेत् ॥ ४ ॥

प्रणवः। धनुः। शरः। हि। आत्मा। ब्रह्म। तत्। लक्ष्यम्। उच्यते। अप्रमत्तेन। वेद्धव्यम्। शरवत्। तन्मयः। भवेत् ॥ ४॥

अ०—पूर्वोक्तरूपकउपमानावयवैरुपमेयस्यैक्यं स्पष्टयति (प्रणवः) तस्य परमात्मनो वाचक ओमिति शब्दः (धनुः) (आत्मा हि) जीवात्मैव (शरः) बाणः (तद्ब्रह्म, लक्ष्यम्, उच्यते) (अप्रमत्तेन) प्रमादरहितेन ध्यानादिसाधनतत्परेण (वेद्धव्यम्) विद्ध्वा च (शरवत्) लक्ष्ये लग्नबाणवत् (तन्मयः) तदाकारवृत्तिः (भवेत्) ॥

भा०—यथा बाणो लक्ष्यं प्रविशति तथैव सूक्ष्मा बुद्धिर्ध्यानाद्युपायेन जिज्ञासुना ब्रह्मणि प्रवेष्टव्या ॥४॥

भावार्थः—पूर्व कहे रूपकालङ्कार में उपमान के अवयवों के साथ उपमेय की एकता दिखाते हैं:-(प्रणवः) उस परमेश्वर का वाचक ओम् शब्द ही (धनुः) उक्त लक्ष्य के बींधने में धनुष (आत्मा, हि)

जीवात्मा ही (शर) बाण और (तत्, ब्रह्म, लक्ष्यम्, उच्यते) वह ब्रह्म लक्ष्य कहा जाता है। ऐसी दशा में (अप्रमत्तेन) अप्रमादी होकर ध्यानादि साधनों में तत्पर रहते हुए मनुष्य को (वेद्धव्यम्) लक्ष्य मारना चाहिये बींधकर (शरवत्) लक्ष्य में लगे बाण के तुल्य (तन्मयः) तदाकारवृत्ति वाला (भवेत्) होवे॥

भा०-जैसे बाण लक्ष्य में प्रवेश करता वैसे ध्यानादि उपाय से सूक्ष्म हुई बुद्धि जिज्ञासु को ब्रह्म में प्रविष्ट करनी चाहिये॥४॥

अस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्ष-मोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः। त-मेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः॥५॥

अस्मिन्। द्यौः। पृथिवी। च। अन्तरिक्षम्। ओतम्। मनः। सह। प्राणैः। च। सर्वैः। तम्। एव। एकम्। जानथ। आत्मानम्। अन्याः। वाचः। विमुञ्चथ। अमृतस्य। एषः। सेतुः ५

अ०-पुनरपि तस्य स्वरूपं निरूप्यते (अस्मिन्) परमात्मनि (द्यौः) सूर्य्यादिलोकः (पृथिवी) (अन्तरिक्षम्, च) वायुमेघादीनामाधारश्च (सर्वैः) (प्राणैः, सह) (मनः, च) सर्वेन्द्रियैः सार्द्धं मनोपि (ओतम्) सूत्रे मणिगणाइवाश्रितम् (एषः) योऽसौ (अमृतस्य) सर्वदुःखराहित्यस्य प्राप्तये (सेतुः) संसारसा-

गराद्युत्तरणहेतुः (तम्, एव, एकम्) अद्वितीयम् (आत्मानम्) परमात्मानम् (जानथ) जानीत (अन्याः) परमार्थापेक्षया भिन्नाः सांसारिकसुखप्रतिप्रतिपादिकाः (वाचः) (विमुञ्चथ) परित्यजत॥

भा०—इतः पूर्वं लक्ष्यवेधनरूपं ज्ञानं प्रस्तुतं तच्च लक्ष्यं कियदस्तीति वक्तुमुपक्रमते—नहि सांसारिकलक्ष्यवत्तत्परिच्छिन्नमस्ति किन्तु सूर्यचन्द्रपृथिव्यादिकं सर्वं जगद्यस्यैकदेशे वर्त्तते तदेवं बृहल्लक्ष्यमस्ति तस्य प्राप्तिरपि तादृशेनैवोपायेन भवितुमर्हति॥५॥

भाषार्थः—फिर भी उस परमेश्वर के स्वरूप का निरूपण करते हैं (अस्मिन्) इस परमेश्वर में (द्यौः) सूर्यादि लोक (पृथिवी) पृथिवी (अन्तरिक्षम्) वायु और मेघादि के ठहरने का मध्य अवकाश तथा (सर्वैः) सब (प्राणैः, सह) इन्द्रियों के सहित (मनः, च) मन भी (ओतम्) सूत में मूंगा के तुल्य लगा है (एषः) जो यह (अमृतस्य) सर्व दुःखों से छूटने के लिये (सेतुः) संसार समुद्र से पार होने का कारण है (तम्) (एव) (एकम्) उसी एक (आत्मानम्) परमात्मा को (जानथ) जानो और (अन्याः) परमार्थ से भिन्न विरुद्ध केवल संसार के भोगों को कहने वाली (वाचः) वाणियों को (विमुञ्चथ) छोड़ो॥

भा०—इस से पूर्व लक्ष्य की प्राप्तिरूप ज्ञान का प्रसङ्ग है। अब वह लक्ष्य कितना बड़ा है? इस बात को जताते हैं—संसारी लक्ष्य वस्तुओं के तुल्य वह परिच्छिन्न नहीं किन्तु सूर्य्य चन्द्रमा

और पृथिवी आदि इस के एक देश में वर्त्तमान हैं वह ऐसा बड़ा अनन्त लक्ष्य है उस की प्राप्ति भी वैसे ही बड़े उपाय से हो सकती है ॥५॥

अराइव रथनाभौ संहताइव नाड्यः स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः । ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥६॥

अराःऽइव । रथनाभौ । संहताःऽइव । नाड्यः । सः । एषः । अन्तः । चरते । बहुधा । जायमानः । ओम् । इति । ध्यायथ । आत्मानम् । स्वस्ति । वः । पाराय । तमसः । परस्तात् ॥६॥

अ -(यत्र) यस्मिन् हृदये यथा (रथानाभौ रथचक्रस्य मध्यभागे (अराइव) इतस्ततः काष्ठानि संयोज्यन्ते तथा (नाड्यस्संहताः) एकीभूताःसन्ति तत्र योगिभिरुपलभ्यमानः (बहुधा, जायमानः) कर्म्मोपासनाज्ञानयोगाद्युपायैः प्रसिद्धिम्प्राप्यमाणः (सः,एषः,अन्तश्चरते) सर्वप्राणिनिकायेषु विचरति तम् (वः) युष्माकम् (पाराय) दुःखसागरात् तारणाय (स्वस्ति) कल्याणरूपम् (तमसः) अन्धकारात् (परस्तात्) पृथग्भूतम्

(आत्मानम्) सर्वत्रव्याप्तम् (ओमित्येवं) ओमिति वाचकशब्दालम्बनेनयूयम् (ध्यायथ) चिन्तयत ॥

भा०—इतः पूर्वमन्त्रे ज्ञेयस्यात्मनोऽनन्तत्वमुक्तम् । तत्र परिच्छिन्नस्य जीवात्मनः प्रवृत्तिः कथं स्यात्—इत्युच्यते—हृदयान्तर्वर्त्तिनीनाडीमार्गेण याश्चेतोवृत्तयो बहिर्निस्सरन्तितता अन्तर्निरुद्ध्य बहुकालं ध्यानेनात्मोपलभ्यते ॥ ६ ॥

भाषार्थः-(यत्र) जिस हृदय में (रथनाभौ) जैसे रथ के पहिये की पुट्ठी पर (अरायव) इधर उधर से लकड़ी जोड़ी जाती हैं वैसे (नाड्यः) नाड़ी (संहताः) नाभिचक्र में मिली हैं उसी हृदय में योगी लोग जिस को प्राप्त होते हैं (बहुधा, जायमानः) कर्म्म उपासना और ज्ञान योगादि अनेक प्रकार के उपायों से हृदय में प्रसिद्धि को प्राप्त होता हुआ (सः,एषः) वह परमेश्वर (अन्तश्चरते) सब प्राणियों के हृदयों में साक्षीरूप हो कर विचरता है उस (वः) तुम लोगों को (पाराय) दुःख सागर से पार होने के लिये (स्वस्ति) कल्याणरूप (तमसः) अन्धकार से (परस्तात्) परे (आत्मानम्) सर्वत्र व्याप्त परमेश्वर का (ओमित्येवम्) ओम् इस वाचक शब्द के अवलम्ब से तुम (ध्यायथ) ध्यान करो ॥

भा०—इस से पूर्व मन्त्र में जानने योग्य आत्मा का अनन्त होना कहागया है उस में परिच्छिन्न जीवात्मा की प्रवृत्ति कैसे हो इस लिये थोड़े अवकाश में प्राप्त होसकना इस मन्त्र में दिखाया है अर्थात् हृदय में रहने वाली नाड़ियों के मार्ग से जो चित्त की वृत्तियां इन्द्रियों द्वारा बाहर निकलती हैं उन को भीतर रोक कर बहुत कालतक नित्य नियम पूर्वक ध्यान करने से परमात्मा प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः। मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति ॥ ७ ॥

प०–यः। सर्वज्ञः। सर्ववित्। यस्य। एषः। महिमा। भुवि। दिव्ये। ब्रह्मपुरे। हि। एषः। व्योम्नि। आत्मा। प्रतिष्ठितः। मनोमयः। प्राणशरीरनेता। प्रतिष्ठितः। अन्ने। हृदयम्। सन्निधाय। तद्विज्ञानेन। परिपश्यन्ति। धीराः। आनन्दरूपम्। अमृतम्। यत्। विभाति ॥ ७ ॥

अ०–(धीराः) योगाभ्यासतत्पराः पुरुषाः (मनोमयः) विषयाकारान्तःकरणवृत्तिषु तदाकारतामापन्नः (प्राणशरीरनेता) इन्द्रियशक्तीनां शरीरस्य च नायकः (हृदयम्) (सन्निध्याय) आश्रित्य (अन्ने) अन्ननिमत्तेन (प्रतिष्ठितः) शरीरेऽवस्थितो यो जीवात्माऽस्ति (तद्विज्ञानेन) तस्य विज्ञानपुरःसरम् (यत्) (आनन्दरूपम्) (अमृतम्) कालत्रयेऽपि मरणधर्म्मरहितम् (विभाति) सर्वं प्रकाशयति तत (परिपश्यन्ति) प-

रितः सर्वतो दिक्षु व्याप्तं हृदये पश्यन्ति किम्भूतः स परमात्मा (यः) (सर्वज्ञः) सर्वं चराचरं याथातथ्येन जानाति (सर्ववित्) सर्वस्मिन् चराचरे विद्यते सर्वं वा विन्दति (यस्य) (एषः) (भुवि) (महिमा) सर्वलोकलोकान्तरादीनां कार्य्यवस्तूनां स्वस्वनियमेनाहर्निशं प्रवृत्तिरेव महत्त्वसूचिका (एषः) आत्मा (दिव्ये) निर्मले (व्योम्नि) अवकाशे (ब्रह्मपुरे) ब्रह्मरन्ध्रे (हि) (प्रतिष्ठितः) निश्चयेनावस्थितो ध्यायिभिस्तत्रैवोपलभ्यते ॥

भा०—यद्यपि सर्वस्वज्ञाता परमेश्वरः सर्वत्र व्याप्तोऽस्ति तथापि निर्मलदर्पणे रूपमिव प्रबलोपायैः शुद्धान्तःकरणएवोपासकैः प्राप्यते। अस्य प्राप्तेः पूर्वं शरीरेन्द्रियादीनामधिष्ठातुर्विषयासक्तस्य स्वस्यात्मनो विज्ञानं कार्य्यम्। नहि स्वस्वरूपेऽविज्ञाते कस्यचित् परमात्मनो ज्ञानं भवितुं शक्यम् ॥ ७॥

भाषार्थः–(धीराः) योगाभ्यास करने में तत्पर पुरुष जो (मनोमयः) विषयाकार अन्तःकरण की वृत्तियों में तदाकारता को प्राप्त हुआ (प्राणशरीरनेता) इन्द्रियों और शरीर को अपने २ कार्य में चलाने वाला (हृदयम्) हृदय का (सन्निधाय) आश्रय कर के (अन्ने) अन्नरूप निमित्त से (प्रतिष्ठितः) शरीर में स्थित हुआ जीवात्मा है (तद्विज्ञानेन) उस को जानने पूर्वक ही (यत्)

जो (आनन्दरूपम्) आनन्दस्वरूप (अमृतम्) तीनों काल में न मरने वाला परमेश्वर (विभाति) सब को प्रकाशित करता है उस को (परिपश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं अर्थात् सब दिशाओं में व्याप्त अपने हृदय में मानते हैं वह परमेश्वर कैसा है कि (यः, सर्वज्ञः) जो सब चर अचर संसार को यथार्थरूप से जानता है (सर्ववित्) सब चराचर में सदा विद्यमान वा सब को प्राप्त (यस्य) जिस की (एषः) (भुवि) पृथिवी पर प्रसिद्ध (महिमा) सब लोकलोकान्तरादि का अपने २ नियम से दिन रात कार्य में प्रवृत्ति होना रूप महिमा है (एषः) यह आत्मा (दिव्ये) निर्मल (व्योम्नि) अवकाश (ब्रह्मपुरे) ब्रह्मरन्ध्रा नाड़ी में (हि) (प्रतिष्ठितः) निश्चय कर स्थित है अर्थात् उपासकों को वहीं प्राप्त होता है ॥

भा०—यद्यपि सब का ज्ञाता परमेश्वर सर्वत्र व्याप्त है तो भी निर्मल दर्पण में ही स्पष्टरूप दीख पड़ने के तुल्य प्रबल उपायों से शुद्ध किये अन्तःकरण में ही उपासकों को प्राप्त होता है। इस की प्राप्ति से पहिले शरीर और इन्द्रियों के अधिष्ठाता विषयों में आसक्त अपने आत्मा का ज्ञान करना चाहिये क्योंकि अपना ज्ञान हुए विना किसी को परमात्मा का ज्ञान नहीं हो सकता॥७॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ ८ ॥

भिद्यते । हृदयग्रन्थिः । छिद्यन्ते । सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते । च । अस्य । कर्माणि । तस्मिन् । दृष्टे । परावरे ॥ ८ ॥

अ०—इतः पूर्वं लक्ष्यवेधनदृष्टान्तेन ब्रह्मज्ञानस्योपायो दर्शितः । तत्र संजातब्रह्मज्ञाने मनु-

ष्ये किं लक्ष्मास्तीत्युच्यते (तस्मिन्) इन्द्रिया-गोचरे परोक्षे (परावरे) परं सर्वेन्द्रियविषयादि-भ्यः पृथग्भूतं शरीरत्रयसम्बन्धवर्जितं निर्गुण-मवरं सृष्टिकर्तृत्वादिगुणान्वितं सगुणं तस्मि-न्नुभयविधे ब्रह्मणि (दृष्टे) जिज्ञासुना साक्षात्कृते सति (अस्य) ब्रह्मज्ञानिनः (हृदयग्रन्थिः) हृदिस्था भोगवासना (भिद्यते) ग्रन्थिरिव विमुच्यते (स-र्वसंशयाः) सर्वसन्देहाः (छिद्यन्ते) नश्यन्ति तेन चेतः समाहितं भवति (च) (कर्माणि) शुभाशुभ-मिश्राणि भोगोत्कण्ठया क्रियमाणानि (क्षीयन्ते) क्षीणानि भवन्ति ॥

भा०-यदा मनुष्यः प्रत्यहं योगाभ्यासेन ब्र-ह्मज्ञाने प्रयतते तदा समाधौ परमात्मानं साक्षा-त्कृत्वा वासनारूपेण बुद्धौ स्थिराः कामनास्तासां हेतूनि शुभाशुभमिश्राणि कर्माणि वासनाजन्यान् सर्वान्सन्देहांश्च समूलघातं हन्ति तदानीं सर्व-बाधाविनिर्मुक्तो निरुपद्रवः शान्तस्तिष्ठति ॥८॥

भाषार्थः-इस से पूर्व लक्ष्य वेधन के दृष्टान्त से ब्रह्मज्ञान का उपाय दिखाया है उन में जिस मनुष्य को ब्रह्मज्ञान हो जाता है उस में क्या चिह्न है सो कहते हैं-(तस्मिन्) उस इन्द्रियों से अग्राह्य परोक्ष (परावरे) सब इन्द्रिय और विषयों से पृथक् तथा स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरों के सम्बन्ध से रहित निर्गुण-पर

और सृष्टि कर्तृत्व आदि गुणों से युक्त सगुण अवर इस दोनों प्रकार के ब्रह्म के (दृष्टे) जिज्ञासु पुरुष ने साक्षात् किये पर (अस्य) इस ब्रह्मज्ञानी की (हृदयग्रन्थिः) हृदय में स्थित वासनारूप गांठ (भिद्यते) खुलजाती (सर्वसंशयाः) सब सन्देह (छिद्यन्ते) छिन्नभिन्न हो जाते जिस से चित्त में समाधान स्थिरता होती (च) और (कर्माणि) फल भोग की अभिलाषा से किये जानेवाले शुभ अशुभ वा मिले हुए कर्म (क्षीयन्ते) नष्ट हो जाते हैं ॥

भा०-जब मनुष्य प्रतिदिन ब्रह्मज्ञान होने के लिये योगाभ्यास द्वारा प्रयत्न करता है तब समाधि में परमेश्वर को साक्षात् जानकर वासनारूप से बुद्धि में स्थिर भोग की कामना, उन के कारण, शुभ अशुभ वा मिले हुए कर्म और वासना से होने वाले सब सन्देहों को निर्मूल नष्ट कर देता है उस समय सब बाधाओं से छूट कर निरुपद्रव शान्त हो जाता है ॥ ८ ॥

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म नि-ष्कलम् । तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योति-स्तद्यदात्मविदो विदुः ॥ ९ ॥

हिरण्मये । परे । कोशे । विरजम् । ब्रह्म । निष्कलम् । तत् । शुभ्रम् । ज्योतिषाम् । ज्योतिः । तत् । यत् । आत्मविदः । विदुः ॥९॥

अ०-(परे) बाह्यापेक्षया परभूते (हिरण्मये) ज्ञान प्रकाशस्वरूपे (कोशे) अन्तःस्थे हृदयावकाशे (त)य (विरजम्) अविद्यारजोगुणादिदोषमलैर्विरहम् (निष्कलम्) कलाभिरवयवैर्निर्गतं निरवयवम् (ब्रह्म) सर्ववस्तुभ्यो महादात्मतत्त्वमस्ति (तत्) (शुभ्रम्) शुद्धम् (तत्) (ज्यो-

तिषाम्) मनआदीनां प्रत्यगात्मस्थसुखदुःखादिप्रकाशकानामग्न्यादीनांबाह्यवस्तुप्रकाशकानामपि (ज्योतिः) प्रकाशकमिति (आत्मविदः) आत्मानं जीवात्मानं परमात्मानं च विदन्ति तत्त्वतो जानन्ति ते (विदुः) जानन्ति नत्वन्ये विषयभोगासक्ता ज्ञातुमर्हन्ति ॥

भ०-अस्मिन्नेव हृदयावकाशे ज्ञानप्रकाशमयेऽसेरिव कोशे शुद्धं सनातनमपरिच्छिन्नं निर्मलं निष्पापं निरञ्जनं प्रकाशकानामपि प्रकाशकं योगाभ्यासतत्परैः शुद्धात्मान्तःकरणैः शान्तैर्लौकिकसुखभोगाद्विरक्तमनस्कैर्विद्वद्भिरेव ज्ञायते नतु तद्विपरीतैरिति ॥ ९ ॥

भाषार्थः-(परे) बाहिरी वस्तु की अपेक्षा शरीर के भीतर (हिरण्मये) ज्ञान प्रकाशस्वरूप (कोशे) भीतरी हृदय के अवकाश में (यत्) जो (विरजम्) अविद्या वा रजो गुण आदि दोषरूप मलों से रहित (निष्कलम्) निरवयव (ब्रह्म) सब वस्तुओं से बड़ा आत्मतत्त्व है (तत्) वह (शुभ्रम्) शुद्ध (तत्) और वह (ज्योतिषाम्) सुख दुःखादि के प्रकाशक भीतर रहने वाले मन आदि और बाहरी वस्तुओं के प्रकाशक अग्नि आदि का भी (ज्योतिः) प्रकाशक है ऐसा (आत्मविदः) जीवात्मा परमात्मा को तत्त्व से जानने वाले विद्वान् (विदुः) जानते हैं किन्तु अन्य विषय सम्बन्धी भोगों में आसक्त पुरुष नहीं जान सकते ॥

भा०-इसी ज्ञान प्रकाशस्वरूप हृद्यावकाश (जो तलवार के मियाने के तुल्य बना है) में अपरिच्छिन्न विभु शुद्ध सनातन निष्पाप निर्मल निरञ्जन प्रकाशकों के भी प्रकाशक ब्रह्म को लौकिक सुख भोगों से जिन का मन विरक्त हो गया ऐसे योगाभ्यास में तत्पर शुद्धान्तःकरण वाले शान्तिशील विद्वान् लोग ही जानते हैं। किन्तु इन से विपरीत लोग नहीं जान सकते ॥ ९ ॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ १० ॥

न । तत्र । सूर्यः । भाति । न । चन्द्रतारकम् । न । इमाः । विद्युतः । भान्ति । कुतः । अयम् । अग्निः । तम् । एव । भान्तम् । अनुभाति । सर्वम् । तस्य । भासा । सर्वम् । इदम् । विभाति ॥ १० ॥

अ०-(तत्र) तस्मिन्ब्रह्मणि (न) (सूर्यः) (न,-चन्द्रतारकम्) चन्द्रश्च तारकाश्चेति द्वन्द्वएकवद्भावः (भाति) (इमाः) प्रत्यक्षाः (विद्युतः) चाक्षुषतेजोऽभिभावुका अपि (न,भान्ति) तर्हि (अयम्, अग्निः,कुतः) प्रत्यक्षः पार्थिवोऽग्निः कथं भायात् किन्तु (तम्,एव,भान्तम्) प्रकाशयन्तम् सर्वम् सूर्यादिकम् (अनुभाति) तद्दत्तप्रकाशम्प्राप्यैव प्रकाशते (तस्य) परमेश्वरस्य (भासा) दीप्त्या

(इदम्, सर्वम्) सूर्यादिकम् (विभाति) विस्पष्टतया प्रकाशते ॥

भा०—यदिदं प्रकाशकं सूर्यादि जगत्प्रत्यक्षतयोपलभ्यते तद्विभाति तेषु च स्वतः प्रकाशो नास्ति किन्तु परमात्मा तान् सूर्यादीन् भाति स्वदत्तेन तेजसा प्रकाशयति सूर्यादयश्च तं प्रकाशयितुमशक्ताः । तस्य ततोऽधिकतेजस्कत्वात् । अतएव ब्रह्मज्ञानोपायेषु सूर्यादेः प्रकाशस्योपयोगो नापेक्षतेऽपितु बाधकं भवति ॥१०॥

भाषार्थः—(तत्र) उस ब्रह्म में (न, सूर्यः) न सूर्य (न, चन्द्रतारकम्) न चन्द्रमा और तारे (भाति) प्रकाश करते तथा (इमाः) ये प्रत्यक्ष चमकने और (विद्युतः) नेत्र सम्बन्धी प्रकाश को दबाने वाली भी बिजुली (न, भान्ति) प्रकाश नहीं करती तो (अयम्) यह पृथिवी पर प्रसिद्ध भौतिक (अग्निः) अग्नि (कुतः) कहां से प्रकाश करे क्योंकि सूर्य का प्रकाश वा तेज अग्नि से प्रबल है और भौतिक अग्नि का कारण भी सूर्य है जब उस में कारण का प्रकाश नहीं पहुंचता तो कार्य का क्या पहुंचेगा किन्तु (तमेव, भान्तम्) उसी प्रकाशमान हुए के पीछे (सर्वम्) सब सूर्यादि (अनुभाति) उस के दिये प्रकाश को पाकर ही प्रकाशित होते हैं (तस्य) उस परमेश्वर की (भासा) दीप्ति से (इदम्, सर्वम्) यह सब सूर्यादि (विभाति) प्रत्यक्ष प्रकाश करते हैं ॥

भा०—जो यह सब का प्रकाशक सूर्यादि जगत् प्रत्यक्षता से प्राप्त होता वही प्रकाशित है उन में अपना स्वतःप्रकाश नहीं

किन्तु परमात्मा उन सूर्यादि को अपने दिये तेज से प्रकाशित करता है और सूर्यादि उस को प्रकाशित नहीं कर सकते क्योंकि परमेश्वर उन सब से अधिक तेज वाला है इसी से ब्रह्मज्ञान के उपायों में सूर्यादि के प्रकाश का उपयोग अपेक्षित नहीं किन्तु नेत्र द्वारा देखने से ध्यान बटकर बाधा होती है ॥ १० ॥

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण। अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥११॥

ब्रह्म। एव। इदम्। अमृतम्। पुरस्तात्। ब्रह्म। पश्चात्। ब्रह्म। दक्षिणतः। च। उत्तरेण। अधः। च। ऊर्ध्वम्। च। प्रसृतम्। ब्रह्म। एव। इदम्। विश्वम्। इदम्। वरिष्ठम् ॥११॥

अ०-ज्ञानिनां बुद्धौ (इदम्) प्रत्यक्षम् (अमृतम्) अविनश्वरम् (पुरस्तात्) समक्षे (ब्रह्मैव) अस्ति। अन्यच्च सर्वं जगन्नश्वरमेव तैर्विज्ञायते। तैः स्वस्य (पश्चात्) (ब्रह्म) (दक्षिणतः) (उत्तरेण, च, अधः, च, ऊर्ध्वम्, च) ब्रह्मैव स्थितमनुभूयते दृश्यते च प्रतिक्षणं तस्मिन्नेव चेतसो लग्नत्वात् (इदम्, विश्वम्) सर्वम् (वरिष्ठम्) सर्वोत्तमं ब्रह्मैवास्ति जगतस्थं सर्वं वस्तुजातं वरिष्ठावरिष्ठमिश्रंतुच्छं वास्ति नहि केवलं वरिष्ठं किमप्यस्ति (इदम्) प्रत्यक्षम्

(ब्रह्म, एव) (प्रसृतम्) नतु तद्व्यतिरिक्तमपि प्रसृतमस्ति तदपेक्षया सर्वस्याल्पत्वात् ॥

भा०-ब्रह्मज्ञानिनां चेतस्सदाब्रह्मण्येव रमतेऽतस्ते सर्वदिक्षु सर्वदा सर्वथा सर्वावस्थासु सर्वस्मादुत्तमं ब्रह्मैव पश्यन्ति ध्यायन्ति च नान्यत्पश्यन्ति ध्यायन्ति वा प्रयोजनाभावात् ॥११॥

भाषार्थः-ज्ञानियों की बुद्धि में (इदम्) यह प्रत्यक्ष (अमृतम्) अविनाशी (पुरस्तात्) सामने (ब्रह्मैव) ब्रह्म ही विद्यमान है तथा अन्य सब जगत् उन को नाशवान् ही दीखता है। उन को अपने (पश्चात्) पीछे (दक्षिणतः) दाहिनी ओर (उत्तरेण) बाईं ओर (च) तथा (अधः) नीचे (च) तथा (ऊर्ध्वम्) ऊपर (च) और सब ओर (ब्रह्म) ब्रह्म ही स्थित जान पड़ता है वा दीखता है क्योंकि उन लोगों का चित्त प्रतिक्षण उसी में लगा रहता है (इदम्, विश्वम्) यह सब (वरिष्ठम्) सर्वोत्तम ब्रह्म ही है जगत् में जितना पदार्थ है उस में अच्छा बुरा मिला रहता किन्तु केवल उत्तम ब्रह्म ही है (इदम्) यह प्रत्यक्ष (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही (प्रसृतम्) फैला है उस के तुल्य फैलाव किसी का नहीं क्योंकि उस की अपेक्षा पृथिवी आकाशादि भी सब अल्प हैं ॥

भा०-ब्रह्मज्ञानियों का चित्त सदा ब्रह्म में ही रहता है इस से वे सब काल में सब दिशाओं में सब प्रकारों से सब अवस्थाओं में सब से उत्तम ब्रह्म को ही देखते वा जानते हैं किन्तु प्रयोजन न रहने से अन्य किसी को न देखते न ध्यान ही करते हैं ॥११॥

इति द्वितीयः खण्डो द्वितीयं मुण्डकं च समाप्तम् ॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ १ ॥

द्वा। सुपर्णा। सयुजा। सखाया। समानम्। वृक्षम्। परिषस्वजाते। तयोः। अन्यः। पिप्पलम्। स्वादु। अत्ति। अनश्नन्। अन्यः। अभिचाकशीति ॥ १ ॥

अ०—पूर्वस्मिन् खण्डे मुख्यतया ब्रह्मात्मनएव वर्णनमस्ति तत्र सप्तममन्त्र इदमप्युक्तम्-योऽसौ हृदयं सन्निधायान्ने प्रतिष्ठितः प्राणशरीरनेता जीवात्मास्ति तद्विज्ञानेन तस्य विज्ञानपुरस्सरमेव विद्वांसः परमात्मानं पश्यन्तीति-तदर्थमस्मिन्खण्डे द्वयोरप्यात्मनोर्वर्णनं सहैवारभते सान्निध्यं साधर्म्यं च द्वयोरपि वक्तुमुपक्रमते-(सयुजा) व्याप्यव्यापकसम्बन्धेन घटाकाशाविव सहैव युक्तौ नास्त्यनयोः पृथग्भावः कदाचिदपि(सखाया) समाना ख्यातिः प्रकटतायाः कारणं योगाभ्यासशमदमतितिक्षोपरत्यादिसाधनं ययोस्तौ सखायौ आत्मेति समाननामानौ वा। अन्यत्र वा कृतसौहार्दौ (सुपर्णा)शोभनं पर्णं पतनं प्रापणं ययोस्तौ पक्षान्तरे दर्शनीयपक्षौ पक्षिणौ (द्वा) जीवा-

त्मपरमात्मानौ (समानम्) एकम् (वृक्षम्) वृश्च्यते छिद्यते–उत्पन्नं सत्पादपइव नश्यति तच्छरीरं प्रकृतिस्थानीयं कार्यकारणरूपं भोग्यं जडं जगच्च (परिषस्वजाते) परितः सर्वतः सक्तौ कृतसङ्गौ वृक्षमारुह्य स्थितावित्यर्थः (तयोः) द्वयोरात्मनोर्मध्ये (अन्यः) एको जीवात्मा (स्वादु) स्वादिष्ठमभिलषितं कर्मणाम् (पिप्पलम्) फलमन्यत्र वृक्षफलम् (अत्ति) भक्षयति (अन्यः) तस्माज्जीवात्मतः स्वरूपतो भिन्नः परमात्मा (अनश्नन्) शुभाशुभकर्मभ्यस्तद्विपाकेभ्यश्चापरामृष्टः कर्मफलमभुञ्जानएव (अभिचाकशीति) साक्षित्वेन सर्वं शुभाशुभं पश्यति सर्वस्य कृत्यं याथार्थ्येन ज्ञात्वा तदनुकूले सुखदुःखफले ददाति ॥

भा०—अत्र रूपकालङ्कारेणात्मद्वयस्य वर्णनम् । ऋग्वेदेपीदृशएवायं मन्त्रः । जगति द्वावेव पदार्थौस्तः । भोक्ता भोग्यं चेतनं जडं पुरुषः प्रकृतिश्चेति ययोर्नाम्नी अभिधीयेते तत्र चेतनौ द्वौ स्तो जीवात्मा परमात्मा च तौ द्वावप्यात्मानौ सर्गस्थितिप्रलयदशासु परिणतायाः वृक्षरूपायाः प्रकृतेर्जडरस्याश्रयं कृत्वावस्थितौ तयोः परमात्मा स्वाभाविकशक्त्यैवास्य सर्ग-

स्थितिलयान् कुर्वाणः सर्वत्र व्याप्तः सर्वान्तर्यामितया सर्वसाक्षीभूतः शुभाशुभकर्माणि तद्विपाकांश्चाननुभवन्नेव जन्ममरणजराव्याध्यादिवर्जितः सर्वबाधाविनिर्मुक्तो जीवात्मस्वरूपतः सदैव भिन्नः सर्गस्थितिलयदशासु प्रकृतिरूपं वृक्षमाश्रयते। द्वितीयो जीवात्मा कर्माणि तद्विपाकांश्चानुभवन् जन्ममरणजराव्याध्यादिजन्यबाधाश्च भुञ्जानः प्रकृतिकार्यमाश्रयते। इत्थं द्वयोर्ज्ञानं मनुष्येण सम्पाद्यम्। स्वात्मानं बद्धं ज्ञात्वैव मुक्तेर्यत्नः कर्त्तुं शक्यते नान्यथा ॥१॥

भाषार्थः-इस से पहिले द्वितीय मुण्डक के द्वितीय खण्ड में मुख्यकर परमेश्वर का ही वर्णन है उस खण्ड के सातवें मन्त्र में यह भी कहा है कि जो अन्न के मिलने से हृदय में स्थित प्राण और शरीर का स्वामी जीवात्मा है उस को जान कर ही विद्वान् लोग परमात्मा को जानते हैं। इस लिये इस तृतीय मुण्डक के प्रथम खण्ड में दोनों आत्मा का वर्णन आरम्भ करते और दोनों की समीपता वा मेल दिखाते हैं (सयुजा) व्याप्य व्यापक सम्बन्ध से घटादि और आकाश के तुल्य सदा इकट्ठे रहने वाले अर्थात् इन का वियोग कभी नहीं होता (सखाया) योगाभ्यास, शम, दम, तितिक्षा और वैराग्यादि दोनों के जानने के एक ही साधन हैं वा दोनों का आत्मा यह एक ही नाम है तथा द्वितीय पक्ष में परस्पर मित्र (सुपर्णा) जिन की प्राप्ति में सुख ही है ऐसे द्वितीय पक्ष में अच्छे पंखों वाले (द्वा) दो जीवात्मा परमात्मा वा पक्ष (समानम्) एक (वृक्षम्) उत्पन्न होकर नष्ट होने वाले प्रकृतिस्थानी शरीर वा कार्य कारणरूप भोग्य जड़ जगत्

को द्वितीय पक्ष में वृक्ष को (परिषस्वजाते) सब ओर से प्राप्त हैं अर्थात् इस वृक्ष पर हो रहते हैं (तयोः) उन दोनों आत्मा वा पक्षियों में से (अन्यः) एक जीवात्मा वा पक्षी (स्वादु) अपनी इच्छा से स्वादिष्ट कर्मों के वा वृक्ष के (पिप्पलम्) फल को (अत्ति) खाता है (अन्यः) और द्वितीय उस जीवात्मा के स्वरूप से भिन्न परमात्मा वा द्वितीय पक्षी (अनश्नन्) कर्म और उन के फल का अनुभव न करता हुआ वा वृक्ष फल का त्यागी हुआ (अभिचाकशीति) साक्षीरूप से सब शुभ अशुभ कर्मों को देखता है और यथार्थ जान कर कर्मों के अनुकूल सुख दुःख फल देता है ॥

भा०—इस मन्त्र में रूपकालङ्कार के साथ दोनों आत्मा का वर्णन है। और यह मन्त्र ऐसा ही ऋग्वेद में भी आता है। जगत् में दो ही पदार्थ हैं जो भोक्ता, भोग्य जड, चेतन प्रकृति और पुरुष नामों से कहे जाते हैं। उन में चेतन के दो भेद हैं एक जीवात्मा और दूसरा परमात्मा। वे दोनों आत्मा उत्पत्ति स्थिति और प्रलय दशा में परिणाम को प्राप्त होने वाली वृक्षरूप जड प्रकृति का आश्रय कर स्थित रहते हैं। उन दोनों में से परमेश्वर स्वाभाविक अपनी शक्ति से ही इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय को करता हुआ सर्वत्र व्याप्त सब का अन्तर्यामी होने से सब का साक्षी हुआ शुभ अशुभ कर्म और उन के फलों का अनुभव न करके जन्म, मरण, वृद्धावस्था और सब व्याधियों से रहित सब दुःखों से छूटा हुआ और जीवात्मा के स्वरूप से सदा भिन्न उत्पत्ति स्थिति और प्रलय तीनों जगत् की अवस्थाओं में प्रकृतिरूप वृक्ष का आश्रय करता है। और द्वितीय जीवात्मा कर्मों तथा उनके फलों का अनुभव करता तथा जन्म, मरण वृद्धावस्था और रोगादि से होने वाले दुःखों को भोगता हुआ प्रकृति के कार्य शरीरादि जगत् का आश्रय करता है इस प्रकार दोनों का ज्ञान मनुष्य को करना चाहिये क्योंकि अपने आत्मा को बद्ध जान कर ही मुक्ति का

यत्न करना बन सकता है। अन्यथा यदि जीवात्मा को बद्ध न मानें किन्तु नवीन वेदान्तियों के तुल्य जीव ब्रह्म को स्वरूप से एक माना जावे तो मुक्ति का उपाय करना ही निरर्थक है क्योंकि ब्रह्म तो मुक्त ही है ॥ १ ॥

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः। जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥ २ ॥

समाने। वृक्षे। पुरुषः। निमग्नः। अनीशया। शोचति। मुह्यमानः। जुष्टम्। यदा। पश्यति। अन्यम्। ईशम्। अस्य। महिमानम्। इति। वीतशोकः ॥ २ ॥

आ०-(समाने) एकस्मिन् जड़े (वृक्षे) नश्वर शरीरादौ जगति (पुरुषः) जीवात्मा (निमग्नः) राग द्वेषादिभिर्लिप्तो वासनारश्मिभिर्बद्धः (मुह्यमानः) मोहेनाविद्यादिक्लेशेन ग्रस्तः (अनीशया) दुःखपाशान्निस्सर्त्तुमशक्तः (शोचति) भार्यापुत्रौ मे नष्टौ धनं मेऽपहृतं किं करोमि क्व गच्छामि नास्ति मम सामर्थ्यं यदेतस्माद्दुःखसागरात्पारं गच्छेयमिति शोकस्थानसहस्रैर्व्याकुलो भवति (यदा) सत्सङ्गतिविद्यायोगाभ्यासादिसाधनानि सेवमानः (अन्यम्) स्वतो भिन्नं निश्शोकम् (जुष्टम्) ज्ञानिभिर्योगिभिश्च सेवितम् (ईशम्) सर्व-

शक्तिमन्तम् (अस्य) ईशस्य (महिमानम्) जगद्रूपं महत्कर्म च (पश्यति) ध्यानादिना साक्षात्करोति (इति) एवं प्रकारेण (वीतशोकः) विगतशोको भवति ॥

भा०—यद्यप्येकस्मिन्नेव कार्ये जगति द्वावेवात्मानौ कृतसम्बन्धौ स्तस्तथापि तयोर्जीवात्मा भोगासक्तत्वाच्छोकमोहादिजन्यदुःखमनुभवतीतरश्च परमात्मा शोकादिरहितः । यदा च योगाभ्यासादिना ज्ञानिज्ञेयं परेशं शोकहर्त्तारं साक्षात्करोति तदायं जीवात्मापि शोकमोहादीन् विहाय सुखी भवति ॥ २ ॥

भावार्थः—(समाने) एक ही जड (वृक्षे) नाशवान् शरीरादि जगत् में (पुरुषः) जीवात्मा (निमग्नः) रागद्वेष आदि से लिप्त और वासनारूप रस्सियों से बंधा (मुह्यमानः) अविद्यादि क्लेशों से ग्रस्त (अनीशया) दुःखरूप फांसी से निकलने में असमर्थ (शोचति) शोचता है कि मेरे स्त्री पुत्र मर गये मेरा धन छिन गया अब मैं क्या करूं! कहां जाऊं! इस दुःखसागर से पार होने का मेरा सामर्थ्य नहीं है इत्यादि प्रकार सहस्त्रों प्रकार की शोक सम्बन्धी विपत्तियों से व्याकुल होता है (यदा) जब सत्संगति विद्या और योगाभ्यासादि साधनों का सेवन करता हुआ (अन्यम्) अपने से भिन्न सब शोकों से रहित (जुष्टम्) ज्ञानि और योगी लोगों से सेवित (ईशम्) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को और (अस्य) इस ईश्वर की (महिमानम्) जगत् की रचनारूप महिमा को (पश्यति) ध्यान दृष्टि से देखता है (इति) इस प्रकार वह भी (वीतशोकः) सब शोकों से रहित हो जाता है ॥

भा०—यद्यपि एक ही जड़ कार्य जगत् में दोनों ही जीवात्मा परमात्मा सम्बन्ध किये हुए हैं तो भी उन में से जीवात्मा भोग में आसक्त होने से शोक मोहादि से होने वाले दुःख का अनुभव करता और द्वितीय परमात्मा शोकादि से रहित है जब योगाभ्यासादि द्वारा ज्ञानियों से जानने योग्य शोकहर्त्ता परमेश्वर को साक्षात् जान लेता है तब यह जीवात्मा भी शोक मोहादि को छोड कर सुखी होता है ॥ २ ॥

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् । तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥ ३ ॥

यदा । पश्यः । पश्यते । रुक्मवर्णम् । कर्त्तारम् । ईशम् । पुरुषम् । ब्रह्मयोनिम् । तदा । विद्वान् । पुण्यपापे । विधूय । निरञ्जनः । परमम् । साम्यम् । उपैति ॥ ३ ॥

अ०—पुनस्तदेव पूर्वोक्तं स्पष्टीक्रियते (यदा) यस्मिन् योगसमाधिकाले (ब्रह्मयोनिम्) ब्रह्मणो वेदस्य योनिः कारणम् । शास्त्रयोनित्वादिति ब्रह्मसूत्रस्यैतदेव मूलम् । अस्य जगतः (कर्त्तारम्) निर्मातारम् (पुरुषम्) पूर्णं व्याप्तम् (रुक्मवर्णम्) प्रकाशमयम् (ईशम्) सर्वशक्तिमन्तं परमेश्वरम् (पश्यः) अन्तःकरणवृत्तिभिर्द्रष्टुं समर्थो ज्ञानी मनुष्यः (पश्यते) पश्यति ध्यानदृष्ट्या विजानाति (तदा) सः (निरञ्जनः) शोकमोहरागद्वेषादिभिर्निर्लिप्तः

(विद्वान्) (पुण्यपापे) (विधूय) त्यक्त्वा (परमम्) अविद्यादिक्लेशराहित्यं कर्मतद्विपाकैश्चापरामृष्टत्वादिकम् (साम्यम्) समत्वम् (उपैति) प्राप्नोति ॥

भा०—यदा ज्ञानी जनो योगाभ्यासादिसाधनैः सर्वस्य मूलं परमेश्वरं विजानाति तदा स सर्वदुःखानि विहाय परमात्मवन्मुक्तो भवति। तत्रापि परेशो नित्य मुक्तोजीवात्मश्चमुक्तिरनित्येति भेदोऽनुसन्धेयः॥

भाषार्थः—फिर भी उसी पूर्वोक्त विषय को स्पष्ट कर कहते हैं—(यदा) जब योग समाधि काल में (ब्रह्मयोनिम्) ब्रह्मनाम वेद के उत्पादक [शास्त्रयोनित्वात्] इस वेदान्त के व्यास सूत्र में भी वेद का मूल कारण ब्रह्म ही माना है उस सूत्र का यही उपनिषद्वाक्य मूल है। इस जगत् के (कर्त्तारम्) बनाने वाले (पुरुषम्) पूर्णव्याप्त (रुक्मवर्णम्) प्रकाशमय (ईशम्) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को (पश्यः) भीतरी ज्ञान वृत्तियों से देखने में समर्थ ज्ञानी पुरुष (पश्यते) देखता है अर्थात् ध्यान दृष्टि से जानता है (तदा) तब (सः) वह (निरञ्जनः) शोक मोह राग द्वेषादि से पृथक् (विद्वान्) विद्यावान् पुरुष (पुण्यपापे) मिले हुए पाप पुण्यों को छोड़कर (परमम्) अविद्यादि क्लेशों से रहित तथा कर्म और उन की फलभोग सम्बन्धी वासना के संग से वर्जित होनारूप परमात्मा की (साम्यम्) तुल्यता को (उपैति) प्राप्त होता है ॥

भा०—जब ज्ञानी पुरुष योगाभ्यासादि साधनों से सब वस्तुओं वा विद्याओं के मूल कारण परमेश्वर को जानता है तब वह सब दुःखों को छोड़ कर परमात्मा के तुल्य मुक्त होता है तो भी

परमात्मा नित्य मुक्त होने से कभी किसी प्रकार के बन्धन में नहीं आता परन्तु जीवात्मा की मुक्ति अनित्य है यह बड़ा भेद भी बना रहता है ॥ ३ ॥

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति वि-जानन् विद्वान् भवते नातिवादी । आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ॥ ४ ॥

प्राणः । हि । एषः । यः । सर्वभूतैः । विभाति । विजानन् । विद्वान् । भवते । न । अतिवादी । आत्मक्रीडः । आत्मरतिः । क्रियावान् । एषः । ब्रह्मविदाम् । वरिष्ठः ॥ ४ ॥

अ०-(यः,एषः) योगिभिः कृतप्रत्यक्षः (प्राणः) स्वसत्तया सर्वप्राणिनां जीवनहेतुः परमात्मा (हि) एव । प्राणस्तथानुगमादिति व्याससूत्रेणापि प्राणइति ब्रह्मणो नाम स्थापितम् (सर्वभूतैः) सर्वप्राणिनिकायैः सह सर्वभूतहृद्देशस्थः (विभाति) साक्षिरूपेणान्तर्यामितया स्वनियमैर्वा सर्वं चराचरं प्रकाशयति (विद्वान्) ज्ञानी पुरुषस्तं प्राणम् (विजानन्) (अतिवादी) बहुभाषी (न, भवते) न भवति किन्तु यावत्प्रयोजनं मितमेव वदति सः (एषः) विद्वान् (आत्मरतिः) आत्मनि प्रत्यगात्मविचारे परमात्मनो ध्यानएव रती-

रमणं रागः प्रीतिरस्य (आत्मक्रीडः) आत्मन्येव बाह्यसाधनापेक्षा क्रीडा यस्य। अर्थाद्बाह्यविषयेषु क्रीडां विहायात्मन्येव विहर्त्तुं शीलः। एवं सत्यपि (क्रियावान्) वेदोक्ताग्निहोत्रादिकर्मसु प्रवृत्तः। एवं भूतो विद्वान् (ब्रह्मविदाम्) ब्रह्मज्ञानिषु (वरिष्ठः) श्रेष्टः ॥

भा०–सर्वान्तर्यामितया स्वसत्तया सर्वप्राणिनां जीवनहेतुं सर्वविद्याकर्मनियमधर्मादीनां प्रकाशकं जगदीश्वरं ज्ञात्वा सर्वविषयेष्विन्द्रियवृत्तीः शिथिलीकृत्य वेदोक्तानि सर्वोपकारकाणि फलाकाङ्क्षारहितानि धर्म्याणि कर्माणि कुर्वन् बाह्यकर्मफलसुखभोगाभिलाषावृत्तित्यागेन प्रत्यगात्मविचारे रममाणः पुरुषएव ब्रह्मवित्सु प्रशस्तो गण्यते यः कर्माणि कुर्वाणः कर्मफलैरेव परमात्मानं प्राप्तुमिच्छति यश्च कर्माणि विहाय केवले ज्ञानएव रमते तावुभावपि निकृष्टौ। तथा चोक्तं यजुषश्चत्वारिंशत्तमेऽध्याये–अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते। ततो भूयइव ते तमो य उ विद्यायाꣳ रताः। अत्राविद्याया ज्ञानाभावरूपस्य कर्मण उपासका वि-

द्यायाः केवलज्ञानकाण्डस्यैवोपासकाश्चोभयेऽपि निकृष्टादर्शिताः। भगवद्गीतासु च बहुशः प्रतिपादितमेतत्। अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः। स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥ इत्यादिना तस्मात्सिद्धमेव ज्ञानकर्मणोः सहैवोपासनम्। फलभोगवासनात्यागएव तु मुक्तेः कारणम्। एवं सति यच्छङ्करस्वामिनाऽग्निहोत्रादिक्रियाणां निरासः प्रदर्शितो नहि स शास्त्रीयराद्धान्तः। पूर्वोक्तप्रकारेण विरोधसत्त्वात्। नहि भोगवासनात्यागे स्वाभाविकरीत्या कर्मणामनुष्ठानमात्मरमणेन साकं विरुध्यते। वैराग्ये च क्रियात्वं न सम्भवति तत्र तु क्रियाणामपि त्यागएव। अतः क्रियावानित्यनेन वेदोक्तकर्मकाण्डस्यानुष्ठानवानेव ग्राह्यः॥ ४॥

भाषार्थः-(यः,एषः) जो यह योगियों से प्रत्यक्ष जाना गया (प्राणः) अपनी सत्ता प्राणियों के जीवन का हेतु परमात्मा (हि) एव [प्राणस्तथानुगमात्। इस वेदान्त सूत्र से भी ब्रह्म का ही नाम प्राण माना गया है] (सर्वभूतैः) सब चेतन शरीरों के साथ सब के हृदय में स्थित (विभाति) साक्षीरूप से अन्तर्यामी होकर अथवा अपने नियमों से सब चराचर जगत् को प्रकाशित करता है (विद्वान्) ज्ञानी पुरुष उस सब के जीवन हेतु

परमेश्वर को (विजानन्) जानता हुआ (अतिवादी) बहुत बोलने वाला (न,भवते) नहीं होता किन्तु प्रयोजन के अनुसार थोड़ा ही बोलता है (एषः) यह विद्वान् (आत्मरतिः) भीतरी विचार रूप परमात्मा के ध्यान में ही प्रीति रखने वाला (आत्मक्रीडः) बाहिरी साधनों की अपेक्षा रखने वाली क्रीडा जिस की भीतरी आत्मा में ही है ऐसा अर्थात् बाहिरी विषयों में क्रीडा [खेल] को छोड़कर आत्मा में ही विहार करने का स्वभाव रखने वाला ऐसा होने पर भी (क्रियावान्) वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्म करने में तत्पर ऐसा विद्वान् (ब्रह्मविदाम्) ब्रह्मज्ञानियों में (वरिष्ठः) श्रेष्ठ माना जाता है ॥

भा०—सर्वान्तर्यामी होने से अपनी सत्ता करके सब प्राणियों को जीवित रखने वाले सब विद्या, कर्म, नियम और धर्मादि के प्रकाशक जगदीश्वर को जान कर सब विषयों से इन्द्रियों की वृत्ति शिथिल करके वेद में कहे सब के उपकारक धर्मानुकूल फल की आकाङ्क्षा रहित कर्मों को करता हुआ बाहिरी कर्मों के सुखरूप फल के भोग की आशारूप वृत्ति के छोड़ने से भीतरी विचार में रमण वा आनन्द मानता हुआ पुरुष ही ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ माना जाता है। और जो पुरुष कर्मों को करता हुआ केवल कर्म के फलभोग के साथ ही परमात्मा को प्राप्त होना चाहता है तथा जो कर्मों को छोड़कर केवल ज्ञान में ही तत्पर होता है वे दोनों ही नीच है। सो यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में कहा है कि (अन्धन्तमः०) यहां अविद्या शब्द से केवल ज्ञान काण्ड लिया गया है उस के उपासक दोनों ही नीच दिखाये हैं। इस अंश पर भगवद्गीता में भी बहुत लेख है (अनाश्रितः कर्मफलम्०) कि जो कर्मफल भोग के आश्रय को छोड़ करके करने योग्य वेदोक्त कर्म को करता है वही संन्यासी तथा योगी है किन्तु कर्मों के छोड़

देने से कोई संन्यासी वा योगी नहीं हो सकता इत्यादि तिस से सिद्ध हुआ कि ज्ञान और कर्म दोनों का साथ ही सेवन करे उस में फलभोग की वासना का त्याग ही मुक्ति का कारण है। ऐसा होने पर जो श्री शङ्कर स्वामी ने अग्निहोत्रादि क्रियाओं का खण्डन दिखाया है वह शास्त्र के सिद्धान्त से विरुद्ध है क्योंकि उन के पक्ष में पूर्वोक्त प्रकार से विरोध है। और यह भी नहीं हो सकता कि भोग की वासना छोड़ कर स्वाभाविक रीति से किया कर्मों का अनुष्ठान आत्मा में रमण के साथ विरुद्ध पड़ता हो। और वैराग्य में कर्म होना सम्भव नहीं क्योंकि वहां कर्म का भी त्याग ही होगा। इस कारण यहां क्रियावान् शब्द से वेदोक्त कर्म का सेवन करने वाला ही लेना चाहिये ॥ ४ ॥

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥५॥

सत्येन। लभ्यः। तपसा। हि। एषः। आत्मा। सम्यग्ज्ञानेन। ब्रह्मचर्येण। नित्यम्। अन्तःशरीरे। ज्योतिर्मयः। हि। शुभ्रः। यम्। पश्यन्ति। यतयः। क्षीणदोषाः ॥ ५ ॥

अ०-(यम्) परमात्मानम् (क्षीणदोषाः) क्षीणा नष्टा दोषा रागद्वेषमोहा येषां ते क्षीणदोषा अविद्यादिक्लेशैरपरामृष्टाः (यतयः) इन्द्रियादीनां नियन्तारो योगिनः (पश्यन्ति) ध्यानेनानुभ-

वन्ति सः (अन्तःशरीरे) शरीरस्य मध्ये (ज्योतिर्मयः हि) ज्योतिर्मय एव न तत्राज्ञानान्धकारस्य लेशोऽप्यस्ति (शुभ्रः) शुद्धो निर्मलः (एषः,आत्मा) योगिनां प्रत्यक्षः परमात्मा (नित्यम्, सत्येन) प्रात्यहिकसत्यभाषणेन (तपसा) नैत्यिकद्वन्द्वसहनादिलक्षणेन (सम्यग्ज्ञानेन) अविपरीतज्ञानेन यथार्थेन नैत्यिकेनैव (ब्रह्मचर्येण) नित्यमष्टविधमैथुनत्यागेनोपस्थेन्द्रियनिग्रहेण [अत्र नित्यशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते] तेन कादाचित्कसत्यभाषणादिना प्राप्तुमशक्यः (लभ्यः) प्राप्तव्यः ॥

भा०—यं परमात्मानं शुद्धाः सर्वदोषविवर्जिताः सत्यादिसाधनसम्पन्ना योगिनो ध्यानेनानुभवन्ति तमन्येऽपि जिज्ञासवः सत्यादिसाधनानां तीव्र संवेगेनानुष्ठानं कृत्वा स्वस्वान्तःकरणे ज्ञानप्रकाशमयं प्राप्तुमर्हन्ति । नहि साधनैर्विना कश्चिदपि जन्मशतेनापि प्राप्तुमर्हति ॥ ५ ॥

भावार्थः—(यम्) जिस परमात्मा को (क्षीणदोषाः) राग द्वेष और मोह रूप दोष जिन के नष्ट होगये वे अविद्यादि क्लेशों से रहित (यतयः) इन्द्रियादि को नियम में रखने वाले योगी लोग (पश्यन्ति) ध्यान से देखते हैं वह (अन्तःशरीरे) शरीर के बीच हृदयाकाश में (ज्योतिर्मयः) ज्योतिःस्वरूप (हि) ही

अर्थात् उसमें अज्ञानान्धकार का लेश भी नहीं (शुभ्रः) निर्मल (एषः, आत्मा) योगियों को प्रत्यक्ष यह परमात्मा (नित्यम्, सत्येन) प्रतिदिन सत्य बोलने (तपसा) निन्दा स्तुति शीत उष्णादि द्वन्द्वों के सहनेरूप नित्य किये तप से (सम्यग्ज्ञानेन) नित्य सेवन किये याथार्थ ज्ञान से और (ब्रह्मचर्येण) नित्य आठ प्रकार के मैथुन का त्याग वा उपस्थ इन्द्रिय के रोकने से [इस मन्त्र में पढ़ा नित्य शब्द प्रत्येक साधन के साथ सम्बन्ध रखता है इसी कारण कभी २ किये सत्य भाषणादि से प्राप्त नहीं हो सकता] (लभ्यः) प्राप्त होने योग्य है ॥

भा०-जिस परमेश्वर का सब दोषों से रहित शुद्ध योगी लोग ध्यान से अनुभव करते हैं अन्य जिज्ञासु भी सत्य आदि साधनों का अत्यन्त वेग से सेवन कर के अपने ही अन्तःकरण में ज्ञान प्रकाशस्वरूप उस ईश्वर को प्राप्त हो सकते हैं। किन्तु साधनों के विना कोई भी सैकड़ों जन्म में भी प्राप्त नहीं हो सकता ॥५॥

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः। येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥ ६ ॥

सत्यम्। एव। जयते। न। अनृतम्। सत्येन। पन्थाः। विततः। देवयानः। येन। आक्रमन्ति। ऋषयः। हि। आप्तकामाः। यत्र। तत्। सत्यस्य। परमम्। निधानम् ॥ ६ ॥

अ०-(आप्तकामाः) आप्तः प्राप्तः कामोऽभीष्टसिद्धिर्निर्बाधो नित्यानन्दो यैस्ते (ऋषयः)

ज्ञानिनो वेदार्थविदः (यत्र) यस्यां दशायाम् (सत्यस्य) सत्यानुष्ठानस्य (परमम्) प्रकृष्टम् (निधानम्) अवस्थितिः सीमास्ति नास्ति यस्मात्परं किमपि सत्यम् (तत्) परमात्मतत्त्वम् (येन) सत्यभाषणेन सर्वथा सर्वदा मिथ्यात्वत्यागेन (आक्रमन्ति) उत्कर्षेण सह गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति तादृशस्य (सत्यमेव जयते) सत्यस्यानुष्ठातैव जयमाप्नोति (न,अनृतम्) नतु मिथ्याभाषणातत्परो यतः (देवयानः) वैदिकधर्मकर्मानुष्ठातॄणां गमनाधिकरणः (पन्थाः) मार्गः परम्परया (सत्येन) सत्याचरणेनैव (विततः) विस्तृतः ॥

भा०–यत्स्वरूपतो विकृतं न भवति तत्सत्यम् । अन्यानि सर्वाणि सत्यानि सापेक्षानि परमात्मनि तस्यावधिः । अन्यस्मिन्कथमपि किञ्चिदसत्यं स्यान्नतु परेशे । तस्मात्सत्याचरणैकयैव योगिनो दुःखसागरमुत्तीर्य परमात्मानमाप्नुवन्ति सत्याचरणपरिपाटीं ज्ञानिजना वर्द्धयन्ति । सर्वमुक्तिसाधनेषु सत्यमेव प्रथमा श्रेणिः ॥६॥

भाषार्थः–(आप्तकामाः) सब बाधाओं से रहित नित्यानन्द रूप अभीष्ट जिन का सिद्ध हो गया वे (ऋषयः) वेदार्थ जानने

से ज्ञानी (यत्र) जिस दशा में (सत्यस्य) सत्य सेवन की (परमम्) सर्वोत्तम (निधानम्) अवस्थिति वा सीमा है जिस से परे अन्य कोई सत्य नहीं (तत्) उस परमात्मतत्त्वस्वरूप को (येन) सब प्रकार सब समय में मिथ्यापन को छोड़ सत्य भाषण से (आक्रमन्ति) उत्तमता के साथ प्राप्त होते हैं वैसे (सत्यमेव, जयते) सत्य का सेवन करने वाला ही जीतता है (न, अनृतम्) किन्तु मिथ्यावादी का कभी जय नहीं होता क्योंकि (देवयानः) वैदिकधर्म का अनुष्ठान करने वाले विद्वान् लोग जिस में चलते हैं ऐसा (पन्थाः) मार्ग (सत्येन) सत्याचरण की परम्परा से ही (विततः) विस्तृत वा प्रचरित हुआ है ॥

भा०-जो स्वरूप से कभी विकारी नहीं होता वही सत्य है। अन्य सब सत्य सापेक्ष बने रहते हैं किसी की अपेक्षा कोई विशेष सत्य रहता है परमात्मा में सत्य की अवधि है। यदि अन्य सत्यों में किसी प्रकार कुछ असत्य भी हो परन्तु परमेश्वर में असत्य का लेश भी नहीं। इस कारण सत्याचरणरूप नौका से ही योगी लोग दुःखसागर के पार उतर कर परमात्मा को प्राप्त होते हैं ज्ञानी लोग ही सत्याचरण की परिपाटी को बढ़ाते हैं इस लिये मुक्ति के सब साधनों में सत्य ही प्रथम सीढ़ी है ॥ ६ ॥

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति। दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥ ७॥

बृहत् । च । तत् । दिव्यम् । अचिन्त्यरूपम् । सूक्ष्मात् । च । तत् । सूक्ष्मतरम् । विभाति । दूरात् । सुदूरे । तत् । इह । अन्तिके । च । पश्यत्सु । इह । एव । निहितम् । गुहायाम् ॥ ७ ॥

अ०-(तत्) परोक्षम् । अतएव (अचिन्त्य-रूपम्) विषयस्वरूपवदस्य रूपं चिन्तितुमनर्हम् (सूक्ष्मात्, च, तत्) प्रकृतिकालाकाशादेरपि (सूक्ष्मतरम्) द्वयोः सूक्ष्मयोः परमं सूक्ष्मम् (दिव्यम्) स्वयंज्योतिःस्वरूपं नहि तत्कस्यापि प्रकाशमपेक्षते (दूरात्) दूरङ्गतवस्तुनः (सुदूरे) अतिशयितं दूरम् (तत्) अतीन्द्रियम् (इह) शरीरे (अन्तिके) समीपम् (च) अपि (बृहत्, च) सर्वमहत्परिमाणविशिष्टाकाशादिभ्यो महदपि (पश्यत्सु) प्रत्यगात्मदृष्ट्या ध्यानादितत्परेषु योगिषु षष्ठ्यर्थे सप्तमी योगिनाम् (इहैव) अस्यामेव शरीरस्थायाम् (गुहायाम्) बुद्धौ (निहितम्) स्थितम् (विभाति) प्रकाशते ॥

भा०-सर्वस्मात्सूक्ष्मं सर्वस्य प्रकाशकमिन्द्रियजन्यविषयसंस्कारवदनुसन्धातुमनर्हमाकाशादिमहत्परिमाणविशिष्टपदार्थापेक्षयापि महत् सर्वत्र व्याप्तमपि ब्रह्म तत्परत्वेन ध्यायिनामन्तःकरणे सन्निहितं प्रत्यक्षं प्रकाशितं भवति । विषयभोगवासनाबद्धानां च सदा दूरं तिष्ठति नहि ते जन्मशतैरपि ज्ञातुं शक्नुवन्ति ॥ ७ ॥

भाषार्थः-(तत्) वह परोक्ष है इसी कारण (अचिन्त्यरूपम्) विषय के रूप के तुल्य जिस का स्वरूप स्मरण में नहीं आसकता (तत्) वह (सूक्ष्मात्, च) प्रकृति काल और आकाशादि सूक्ष्म पदार्थों से भी (सूक्ष्मतरम्) अत्यन्त सूक्ष्म (दिव्यम्) स्वयंज्योतिः स्वरूप क्योंकि वह किसी अन्य वस्तु के प्रकाश की अपेक्षा नहीं रखता (दूरात्) दूर हुए वस्तु से भी (सुदूरम्) अत्यन्त दूर (तत्) वह इन्द्रियों से परे (इह) शरीरस्थ हृदय में (अन्तिके) समीप (च) भी है (बृहत्, च) और सब विभु आकाशादि से भी अत्यन्त बड़ा ब्रह्म है तो भी (पश्यत्सु) भीतरी दृष्टि से ध्यानादि में तत्पर योगी जनों के (इहैव) इसी शरीरस्थ (गुहायाम्) बुद्धि में (निहितम्) स्थित हुआ (विभाति) प्रकाशित होता है॥

भा०-सब से सूक्ष्म सब के प्रकाशक, इन्द्रियों से होने वाले विषय सबन्धी संस्कार के तुल्य जिस का चिन्तन नहीं हो सकता, आकाशादि विभु पदार्थों से भी जो अत्यन्त बड़ा, सर्वत्र व्याप्त भी ब्रह्म तत्पर हो के ध्यान करने वालों के अन्तःकरण में प्राप्त प्रत्यक्ष प्रकाशित होता है अर्थात् योगियों को अपना स्वरूप साक्षात् प्रत्यक्षकरा देता है। और विषय भोग की वासनाओं में बन्धे हुए पुरुषों से सदा दूर रहता है वे लोग सैकड़ों जन्मों में भी उस को प्राप्त नहीं हो सकते ॥ ७ ॥

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा। ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥ ८ ॥

न। चक्षुषा। गृह्यते। न। अपि। वाचा। न। अन्यैः।

देवैः । तपसा । कर्मणा । वा । ज्ञानप्रसादेन । विशुद्धसत्त्वः । ततः । तु । तम् । पश्यते । निष्कलम् । ध्यायमानः । ॥ ८ ॥

अ०—स परमेश्वरः (न, चक्षुषा, न, अपि, वाचा) (न, अन्यैः) (देवैः) विषयद्योतकैः श्रोत्रादिभिरिन्द्रियैः (तपसा) ब्रह्मचर्यादिनियमव्रतधारणैः (कर्मणा) (वा) श्रौतस्मार्त्तकर्म्मानुष्ठानेनापि (गृह्यते) चक्षुरादिभिः साक्षात्कर्त्तुमशक्यः किन्तु यदा मनुष्यस्तपांसि श्रौतस्मार्त्तानि कर्माणि च सेवते तेन तस्य चेतः प्रसीदति (ज्ञानप्रसादेन) रागद्वेषादिमलैरदूषितेन निर्मलेन (विशुद्धसत्त्वः) निर्मलदर्पणवच्छुद्धान्तःकरणो भवति (ततः) तदनन्तरम् (निष्कलम्) निराकारमपरिच्छिन्नम् (ध्यायमानः) (तम्) परमात्मानम् (पश्यते) पश्यति साक्षाद्विजानाति । छान्दसमात्मनेपदम् ॥

भा०—यः परमेश्वरः सूक्ष्मस्थूलविषयेभ्यः परतरोस्ति तस्मादिन्द्रियैर्न ज्ञायते तस्य ज्ञाने तपांसि शुभकर्मानुष्ठानानि च परम्परातः साधनानि सन्ति नतु साक्षात्। तपआदिपरिकर्मभिरन्तःकरणं शुध्यति प्रसन्नया च निर्मलप्रज्ञया ध्यानतत्परेण योगिना साक्षाज्ज्ञायते। साधारणानां च रागद्वे-

षादिकलङ्कैः समलाऽशुद्धाऽप्रसन्ना प्रज्ञा भवति तस्मात्तैः स्वान्तःकरणे स्थितोप्यात्मा ज्ञातुमशक्यः

भाषार्थः-वह परमेश्वर (चक्षुषा,न) न आंख से (न,अपि,वाचा) न वाणी से भी तथा (न,अन्यैः,देवैः) न विषयों का ज्ञान कराने वाले अन्य इन्द्रियों से और न (तपसा) ब्रह्मचर्यादि आश्रमों में होने वाले नियम वा व्रतों के सेवन से (वा) अथवा न (कर्मणा वेद और धर्मशास्त्र सम्बन्धी कर्मों के सेवन मात्र से भी (गृह्यते) प्राप्त होता अर्थात् नेत्र आदि साधनों से विषयादि के तुल्य वह प्राप्त नहीं हो सकता किन्तु जब मनुष्य इन्द्रियों को वश में कर तप और वेदोक्त वा धर्मशास्त्र में कहे कर्मों का सेवन करता है उस से उस का चित्त प्रसन्न होता और (ज्ञानप्रसादेन) रागद्वेषादि दोष रूप मलों से रहित निर्मल शुद्ध चित्त से (विशुद्धसत्त्वः) निर्मल दर्पण के तुल्य शुद्ध अन्तःकरण वाला होता है (ततः) तब के पीछे (निष्कलम्) निराकार व्याप्त का (ध्यायमानः) ध्यान करता हुआ (तम्) उस परमात्मा को (पश्यते) साक्षात् जान लेता है॥

भा०-जो परमेश्वर स्थूल सूक्ष्म विषयों से अत्यन्त दूर है इसी कारण इन्द्रियों से नहीं जाना जाता। उस के जानने तप और शुभ कर्मों के अनुष्ठान परस्परा से साधन हैं किन्तु साक्षात् नहीं। तप आदि के करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है और अन्तःकरण की शुद्धि से प्रसन्न निर्मल हुई बुद्धि द्वारा ध्यान में तत्पर योगी उस को साक्षात् जान लेता है और साधारण लोगों की बुद्धि रागद्वेषादि दोषों से दूषित अशुद्ध मलीन होती है इस लिये अपने अन्तःकरण में स्थित भी आत्मा को वह नहीं जान सकती॥८॥

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन्प्राणः पञ्चधा संविवेश। प्राणै-

श्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ॥ ९ ॥

एषः । अणुः । आत्मा । चेतसा । वेदितव्यः । यस्मिन् । प्राणः । पञ्चधा । संविवेश । प्राणैः । चित्तम् । सर्वम् । ओतम् । प्रजानाम् । यस्मिन् । विशुद्धे । विभवति । एषः । आत्मा॥९॥

अ०-(यस्मिन्) शरीरे (प्राणः) (पञ्चधा) प्राणापानव्यानोदानसमानभेदैः (संविवेश) सम्यक् प्रविष्टस्तस्मिन्नेव शरीरे (प्रजानाम्) प्रजातानां प्राणिनाम् (सर्वम्) (चित्तम्) अन्तःकरणचतुष्टयम्(प्राणैः)प्राणशक्तिधारकैरिन्द्रियैः सह (ओतम्) सूत्रे मणिगणाइव प्रोतम् (यस्मिन्) (विशुद्धे) रागद्वेषमोहैर्वियुक्ते निर्मले चेतसि सति (एषः,आत्मा) परमात्मा (विभवति) स्वस्वरूपं प्रकाशयति तेन (चेतसा) निर्मलेन ज्ञानेन (एषः) योगिनां प्रत्यक्षः (आत्मा) (अणुः) सूक्ष्मो व्याप्तः परमात्मा (वेदितव्यः) ज्ञातव्यः ॥

भा०-प्राणएव स्वशक्तिभेदेनेन्द्रियरूपइति प्रश्नोपनिषदि व्याख्यातम् । अतएव प्राणायामाभ्यासो धातूनामग्निरिवेन्द्रियाणां दोषच्छेदकः। छिन्नेषु चेन्द्रियदोषेषु चेतः प्रसन्नं शुद्धं जायते तेनैव शुद्धचेतोज्ञानेन योगी सर्वस्मात्सूक्ष्मं ब्रह्मा-

त्मानं ज्ञातुं शक्नोति। निर्मलदर्पणे प्रतिविम्बमिव शुद्धे चेतसि दृश्यते तस्माच्चेतःप्रसादाय यमनियमासनसाधनपूर्वकं प्राणायामः सेवनीयः॥९॥

भाषार्थः-(यस्मिन्) जिस शरीर में (प्राणः) प्राण (पञ्चधा) प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान नामक पांच प्रकार के भेदों से (संविवेश) अच्छे प्रकार प्रविष्ट हो रहा है उसी शरीर में (प्रजानाम्) उत्पन्न हुए प्राणी मात्र का (सर्वम्, चित्तम्) चेतनता जताने वाला सब अन्तःकरण अर्थात् मन बुद्धि चित्त और अहंकार (प्राणैः) प्राण की शक्ति को धारण करने वाले इन्द्रियों के साथ (ओतम्) सूत में गुरियाओं के तुल्य पोहा है (यस्मिन्) जिस (विशुद्धे) रागद्वेष और मोहों से पृथक् हुए निर्मल चित्त के होने पर (एषः, आत्मा) यह परमात्मा (विभवति) अपने स्वरूप को प्रकाशित करता है उस (चेतसा) निर्मल चित्त वा ज्ञान से (एषः) यह योगियों को प्रत्यक्ष (अणुः) सूक्ष्म व्याप्त (आत्मा) परमात्मा (वेदितव्यः) जानना चाहिये ॥

भा०-प्राण ही अपनी शक्ति के भेदों से अनेक इन्द्रिय रूप है यह प्रश्नोपनिषद् में व्याख्यान किया गया है। इसी कारण सुवर्णादि धातुओं को अग्नि के तुल्य प्राणायाम का अभ्यास इन्द्रियों के मलरूप दोषों को नष्ट करने वाला है। जब इन्द्रियों के दोष कट जाते हैं तभी चित्त शुद्ध होता है उसी चित्त के शुद्ध ज्ञान से सब से सूक्ष्मब्रह्म को योगी पुरुष जान सकता है और निर्मल दर्पण में छाया के तुल्य शुद्धहृदय में ब्रह्म दीखता है इस कारण चित्त की प्रसन्नता के लिये यम नियम और आसन की सिद्धि पूर्वक प्राणायाम का सेवन करना चाहिये ॥ ९ ॥

यंयं लोकं मनसा संविभाति वि-

शुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान् ।
तं तं लोकं जायते तांश्च कामांस्त-
स्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः ॥१०॥

यंयम् । लोकम् । मनसा । संविभाति । विशुद्धसत्त्वः । कामयते । यान् । च । कामान् । तंतम् । लोकम् । जायते । तान् । च । कामान् । तस्मात् । आत्मज्ञम् । हि । अर्चयेत् । भूतिकामः ॥१०॥

अ०-(विशुद्धसत्त्वः) शुद्धान्तःकरणो विगतछलकपटेर्ष्यामत्सरतादिदोषः सत्यसङ्कल्पः शान्तो जितेन्द्रियो जीवन्मुक्तिदशामापन्नो योगी ब्रह्मज्ञानी पुरुषः प्राप्तयोगविभूतिः (यंयम्) (लोकम्) सूर्यचन्द्रादिकम् (मनसा) मानसानुभवेन (संविभाति) सङ्कल्पयति तत्र (च) (यान्) (कामान्) सुखभोगान् (कामयते) अभीप्सति (तन्तम्) (लोकम्) (तांश्च) (कामान्) (जायते) प्राप्नोति (तस्मात्) जिज्ञासुः (भूतिकामः) योगसिद्धीनामभिलाषुकः पुरुषः सत्यसंकल्पज्ञानिसेवनेन तदुक्तानुष्ठानेन चाहमपि तादृशः स्यामिति कारणात् (आत्मज्ञम्) ब्रह्मज्ञानिनम् (अर्चयेत्, हि) सेवेतैव ॥

भा०-विदितवेदितव्योऽधिगतयाथातथ्यस्तत्त्वज्ञानी ब्रह्मज्ञः पुरुषो मुक्तिमाप्तुमर्हति स

यदि मोक्षानन्दं विहाय योगसिद्धिजमानन्दमनुभवितुमिच्छेत्तर्हि शरीरं विहायापि यं यं लोकं गन्तुमिच्छति यांश्च दुर्लभानपि भोगान्भोक्तुमिच्छति सर्वं तस्य प्राप्तं भवति। तस्माद्योऽन्योऽप्येवं सुखं भोक्तुमिच्छेत्सोऽपि तमेव ब्रह्मज्ञानिनं सेवेत ॥ १० ॥

भाषार्थः-(विशुद्धसत्त्वः) छल कपट ईर्ष्या और मत्सरतादि दोषों से दूर हुआ शुद्धचित्त वाला सत्य जिस का सङ्कल्प [निश्चय] है जो कभी मिथ्या की चाहना नहीं रखता शन्तिशील, जितेन्द्रिय जीवन्मुक्ति दशा को प्राप्त हुआ ब्रह्मज्ञानी योग की विभूति को प्राप्त योगी पुरुष (यं यम्,लोकम्) जिस २ सूर्यादि लोक में पहुंचने का (मनसा) मन के अनुभव से (संविभाति) सङ्कल्प करता है (च) और उन लोकों में (यान्) जिन (कामान्) सुख भोग की अभिलाषाओं को (कामयते) चाहता है (तंतम्, लोकम्) उस २ लोक (च) और (तान्, कामान्) उन कामनाओं को (जायते) प्राप्त होता है (तस्मात्) इस कारण (भूतिकामः) योग सम्बन्धी सिद्धियों को चाहने वाला जिज्ञासु पुरुष, सत्यसङ्कल्प वाले ज्ञानी के सेवन से और उस के कहे अनुसार काम करने से मैं भी वैसा होऊं इस कारण (आत्मज्ञम्) ब्रह्मज्ञानी की (अर्चयेत्, हि) सेवा शुश्रूषा वा सत्कार अवश्य करना चाहिये ॥

भा०-जिसने जानने योग्य को जान लिया जो ठीक २ सत्य को प्राप्त होगया ऐसा तत्त्व को जानने वाला ब्रह्मज्ञानी पुरुष मुक्ति का अधिकारी होता है वह यदि अपनी इच्छा से मोक्ष सम्बन्धी आनन्द को छोड़ कर योग सिद्धियों से होने वाले आनन्द के अनुभव की इच्छा करे तो शरीरको छोड़ कर भी जिस २

सूर्यादि लोक में जाना चाहता वा जिन २ दुर्लभ भोगों को भोगना चाहता है वह सब उस को प्राप्त होता है इस से जो अन्य भी ऐसा सुख भोगना चाहे वह भी उसी ब्रह्मज्ञानी का सेवन करे ॥ १० ॥

इति तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ॥

स वेदैतत्परमं ब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम् । उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्त्तन्ति धीराः ॥ १ ॥

सः । वेद । एतत् । परमम् । ब्रह्म । धाम । यत्र । विश्वम् । निहितम् । भाति । शुभ्रम् । उपासते । पुरुषम् । ये । हि । अकामाः । ते । शुक्रम् । एतत् । अतिवर्त्तन्ति । धीराः ॥ १ ॥

अ०-(यत्र) यस्मिन् ब्रह्मणि (विश्वम्) सर्वं चराचरं जगत् (निहितम्) अवस्थितम् । यत्स्वेन प्रकाशस्वरूपेण निर्मलम् (शुभ्रम्) शुद्धम् (भाति) यच्च सर्वस्य विश्वस्य (धाम) आधारस्तत् (एतत्) (परमम्) सर्वोत्तमम् (ब्रह्म) (सः) पूर्वोक्तो ज्ञानीपुरुषः (वेद) जानाति (ये,अकामाः) परित्यक्तविषयभोगतृष्णाः सन्तः (पुरुषम्) पूर्णं व्याप्तं परमात्मानम् (उपासते) (ते) (धीराः) ध्यानवन्तः अपि (एतत्) प्रसिद्धौ नृशरीरकारणम्

(शुक्रम्) रेतःप्रवेशम् (अतिवर्त्तन्ति) अतिक्रम्य गच्छन्ति न पुनर्योनिद्वारा सर्पन्ति ॥

भा०-सर्वाधारं सर्वकामानां पूरकं सर्वदा प्रकाशमानं निर्मलं शुद्धं सर्वोत्तमं परमेश्वरं पूर्वोक्तगुणविशिष्टो ज्ञानी पुरुषएव जानाति तद्वद्येऽन्येऽपि सर्वविषयसुखभोगवासनां विहाय तस्यैवोपासनं कुर्वते तेऽपि जन्ममरणजदुःखं विहाय मुक्तिमाप्नुवन्ति ॥ १ ॥

भाषार्थः-(यत्र) जिस परमेश्वर में (विश्वम्) सब चराचर जगत् (निहितम्) अवस्थित है जो ब्रह्म अपने प्रकाशस्वरूप से निर्मल (शुभ्रम्) शुद्ध (भाति) सब के हृदय में व्याप्त प्रकाशमान है। और जो सब जगत् का (धाम) आधार है उस (एतत्) इस उक्त (परमम्) सर्वोत्तम (ब्रह्म) ब्रह्म को (सः) वह पूर्वोक्त ज्ञानी पुरुष (वेद) जानता है। (ये) जो (अकामाः) विषयसम्बन्धी सुखभोग की तृष्णा को त्यागे हुए मनुष्य (पुरुषम्) पूर्णव्याप्त परमात्मा की (उपासते) उपासना करते हैं वे (धीराः) ध्यानशील पुरुष भी (एतत्) मनुष्य शरीर के प्रसिद्ध कारण (शुक्रम्) वीर्य में प्रविष्टहोने को (अतिवर्त्तन्ति) छोड़ के पृथक् हो जाते हैं फिर योनि मार्ग में नहीं घुसते ॥

भा०-सब के आधार सब कामनाओं के पूरक सदा प्रकाशमान् निर्मल शुद्ध सनातन सर्वोत्तम परमेश्वर को पूर्वोक्त ज्ञानी पुरुष ही जानता है। इस से जो अन्य लोग भी विषयसुख भोग की वासना को छोड़ के उसी की उपासना करते हैं वे भी जन्म मरण के दुःख को छोड़ मुक्ति को पाते हैं ॥ १ ॥

कामान्यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र। पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ॥ २॥

कामान् । यः । कामयते । मन्यमानः । सः । कामभिः । जायते । तत्र तत्र । पर्याप्तकामस्य । कृतात्मनः । तु । इह । एव । सर्वे । प्रविलीयन्ति । कामाः ॥ २ ॥

आ०–अकामाइति पूर्वमन्त्रउक्तं तदेवानेन व्यक्तीक्रियते (यः) (मन्यमानः) प्रत्यभिज्ञया तद्गुणान् ध्यायन् (कामान्) ऐहिकपारलौकिकांश्च भोक्तुमिष्टान् वासनावद्धान् (कामयते) अभीप्सति (सः) कामात्मा पुरुषः (तत्र तत्र) वासनानुकूलेषु जात्यायुर्भोगेषु (कामभिः) विषयसुखभोगाभिलाषैः साकम् (जायते) शरीरेन्द्रियबुद्धिवेदनासमुदाये समुदितः प्रकटी भवति (पर्याप्तकामस्य) पर्याप्ताः परितआप्ता भोगेनातिबाहिताः कामा येन तस्य (कृतात्मनः) कृतः कामक्रोधलोभमोहादि दोषत्यागेन शुद्ध आत्मा यस्य तस्य मुमुक्षोर्जनस्य (इहैव) विद्यमानएव शरीरे (सर्वे) (कामाः) विषयसुखभोग-

संस्काराः (प्रविलीयन्ति) स्वस्वकारणे लीना नाशमुपगता भवन्ति ॥

भा०-यावज्जिज्ञासुपुरुषस्य भोगवासना उद्भूताः सन्ति न तावदात्मज्ञानाय मुक्तये वा कृतो यत्नः फलवान् भवितुमर्हति तस्मात्पूर्वं भोगवासनास्त्याज्याः ॥ २ ॥

भाषार्थः-पूर्वमन्त्र में कामना रहित पुरुषों को अधिकारी माना है उसी को प्रकट करते हैं-(यः) जो (मन्यमानः) पूर्वानुभूत संस्कार के स्मरण से विषयों के गुणों का चिन्तन करता हुआ (कामान्) संसारी दशा और जन्मान्तर में भोगने को अभीष्ट वासनायुक्त विषयों की (कामयते) कामना करता है (सः) वह कामरूप बना पुरुष (तत्र तत्र) उन २ वासनाओं के अनुकूल प्राप्त हुए जाति आयु और भोगों में (कामभिः) विषय सम्बन्धी सुखभोग की अभिलाषाओं के साथ शरीर इन्द्रिय बुद्धि और वेदना समुदाय में मिला हुआ (जायते) प्रकट होता है (पर्याप्तकामस्य) भोग कर समाप्त किये काम जिस ने ऐसे (कृतात्मनः) काम, क्रोध, लोभ, मोहादि दोषों के त्याग से जिस का आत्मा शुद्ध हुआ ऐसे मुमुक्षुपुरुष के (इहैव) इसी विद्यमान शरीर में (सर्वे) सब (कामाः) कामना विषयभोग की वासना (प्रविलीयन्ति) अपने २ कारण में लीन-अदर्शन को प्राप्त होती हैं ॥

भा०-जब तक जिज्ञासु पुरुष की भोग वासना जगी हुई हैं तब तक आत्मज्ञान वा मुक्ति के लिये किया यत्न सफल नहीं होता इस लिये प्रथम भोग वासना त्यागनी चाहिये ॥ २ ॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते

तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूंस्वाम् ॥ ३ ॥

न । अयम् । आत्मा । प्रवचनेन । लभ्यः । न । मेधया । न । बहुना । श्रुतेन । यम् । एव । एषः । वृणुते । तेन । लभ्यः । तस्य । एषः । आत्मा । वृणुते । तनूम् । स्वाम् ॥ ३ ॥

अ०—अयं मन्त्रईदृशएवकठोपनिषदि द्वितीयवल्ल्यां त्रयोविंशोऽस्ति । तस्मात्सएवार्थोऽत्रापि प्रकाश्यते । ग्रन्थभेदाच्च भेदः (अयम्) (आत्मा) (प्रवचनेन) अध्यापनेनोपदेशेन वा (न) (लभ्यः) (न, मेधया) न शास्त्रार्थधारणावत्या बुद्ध्या (न) न च (बहुना श्रुतेन) बहूनां शास्त्राणां पठनेन श्रवणेन लभ्यः कथं तर्हि लभ्यस्तदाह (एषः) मनुष्यः (यमेव) परमात्मानमेव मनसा वाचा कर्मणाऽनन्यचेताः (वृणुते) स्वीकरोति प्रार्थयति स्तौत्युपास्ते नान्यं कंचिदुपास्यबुद्ध्या मनुते (तेन) मनुष्येण (लभ्यः) (एषः, आत्मा) परमात्मा (तस्य) तस्मै चतुर्थ्यर्थे षष्ठी (स्वाम्) (तनूम्) यथार्थं रूपम् (वृणुते) प्रकाशयति ज्ञापयति ॥ ३ ॥

भा०—वेदादिशास्त्रेषु प्रवीणाः स्मृतिमन्तो वेदानामध्यापने तदाशयोपदेशे वा कुशला बहुश्रु-

ताश्च लोकएव प्रतिष्ठिता भवन्ति। नहि वेदशास्त्रादीनां ज्ञानमात्रं ब्रह्मप्राप्तिहेतुकं भवितुमर्हति किन्तु शास्त्राण्यधीत्य तल्लेखानुसारमनन्यचेता यदा ब्रह्मात्मानमुपास्ते तदाऽयं प्राण्यात्मज्ञानजन्यसुखभाग्भवति। ब्रह्म च प्रसन्नं सत्तस्मै स्वस्वरूपं प्रकाशयति ॥ ३ ॥

भावार्थः-यह मन्त्र ज्यों का त्यों कठोपनिषद् की द्वितीय वल्ली में तेईशवां ऐसा ही आया है। इस कारण वही अर्थ यहां भी लिखा गया है। ग्रन्थ के भेद से दो बार पढ़ा गया जिस से कठ मुण्डक में से एक २ को पढ़ने वाले दोनों इस मन्त्र के अभिज्ञ रहें। (अयम्) यह (आत्मा) परमेश्वर (प्रवचनेन) पढ़ाने वा उपदेश करने की शक्ति से (न, लभ्यः) प्राप्त होने योग्य नहीं (न,मेधया) शास्त्र के सिद्धान्त को धारण करने वाली बुद्धि से नहीं प्राप्त होता और (बहुना, श्रुतेन) बहुत शास्त्रों के पढ़ने वा बहुत से शास्त्रादि सम्बन्धी उपदेश सुनने से भी (न) नहीं प्राप्त होता। तो कैसे प्राप्त होता है सो भी कहते हैं (एषः) यह मनुष्य (यमेव) जिस कारण परमात्मा को ही मन वचन कर्म से एक चित्त होके (वृणुते) स्तुति प्रार्थना करता तथा सब समय उसी का विचार वा ध्यान करता है अन्य किसी को उपास्य नहीं मानता (तेन) उस मनुष्य से (लभ्यः) प्राप्त होने योग्य है (एषः) (आत्मा) यह परमात्मा (तस्य) उस मनुष्य के लिये (स्वाम्) अपने (तनूम्) यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित कर देता अर्थात् जता देता है ॥

भा०-वेदादि शास्त्रों में प्रवीण स्मरण रखने वाले वेदों के पढ़ाने वा उन के अभिप्राय का उपदेश करने में कुशल और बहु-

युत लोग संसार में ही प्रतिष्ठित होते हैं वेद शास्त्रों के जानने मात्र से ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता किन्तु शास्त्रों को पढ़ के उन में लिखे अनुसार अनन्यचित्त होके जब ब्रह्म की उपासना करता है तब यह प्राणी आत्मज्ञान से होने वाले सुख का भागी होता और प्रसन्न हुआ ब्रह्म भी उस के लिये अपने स्वरूप का प्रकाश कर देता है ॥ ३ ॥

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसोवाप्यलिङ्गात्। एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्म धाम ॥ ४ ॥

न। अयम्। आत्मा। बलहीनेन। लभ्यः। न। च। प्रमादात्। तपसः। वा। अपि। अलिङ्गात्। एतैः। उपायैः। यतते। यः। तु। विद्वान्। तस्य। एषः। आत्मा। विशते। ब्रह्म। धाम ॥ ४ ॥

अ०—(अयम्, आत्मा) (बलहीनेन) उपस्थेन्द्रिय निग्रहरूपब्रह्मचर्यसेवनजन्यबलविहीनेन पुरुषेण बुद्धेर्निर्बलत्वात् (न, लभ्यः) (प्रमादात्) विषयासङ्गजन्यपरमार्थसाधनविस्मरणात् (वापि) अथवा (अलिङ्गात्) लिङ्गानि सचिन्हा ब्रह्मचर्याद्याश्रमास्तद्विरुद्धात्पाखण्डनिर्मितात् (तपसः) (न,च) लब्धुमर्हइति शेषः (एतैः) ब्रह्मचर्यधारणप्रमादत्यागसत्यतपोनुष्ठानैः (उपायैः)

(यः, तु, विद्वान्, यतते) (तस्य) विदुषः (एषः) योगेन प्रत्यक्षः (आत्मा) जीवात्मा (ब्रह्म) महत् (धाम) सर्वाधारम् (विशते) प्रविष्टं प्रत्यक्षम्भवति

भा०-विरुद्धसाधनैः प्रमादपाखण्डरतैः पुरुषैः परमेश्वरः प्राप्तुमशक्यः किन्तु प्रमादादित्यागेनोपायैः प्रयतमानः प्राप्तुं शक्नोति तस्मात्सत्यतपआदिसाधनानां संग्रहएव निःश्रेयसस्य प्रथमा श्रेणिरिति ॥ ४ ॥

भाषार्थः-(अयम्, आत्मा) यह परमेश्वर (बलहीनेन) ब्रह्मचर्य के सेवन से होने वाले बल से रहित पुरुष को बुद्धि के निर्बल होने से (न,लभ्यः) प्राप्त होने योग्य नहीं (प्रमादात्) विषयासक्ति से होने वाले परमार्थ सम्बन्धी साधनों के विस्मरण-भूलने से (वापि) अथवा (अलिङ्गात्) चिह्न सहित ब्रह्मचर्यादि आश्रमों से विरुद्ध पाखण्ड से किये (तपसः) तप से भी (न,च) नहीं प्राप्त हो सकता (एतैः) इन ब्रह्मचर्य के धारण, प्रमाद के त्याग और सत्य वा तप के सेवनरूप (उपायैः) उपायों के साथ (यः, तु, विद्वान्, यतते) जो विद्वान् प्रयत्न करता है (तस्य) उस ज्ञानी का (एषः) योगाभ्यास से प्रत्यक्ष होने वाला (आत्मा) जीवात्मा (ब्रह्म) सब से बड़े (धाम) सब के आधार परमेश्वर में (विशते) प्रविष्ट होता है ॥

भा०-प्रमाद वा पाखण्डादि विरुद्ध साधनों वाले पुरुषों को परमेश्वर प्राप्त नहीं हो सकता किन्तु प्रमाद आदि के छोड़ने से उपायों के सेवन पूर्वक प्रयत्न करता हुआ प्राप्त हो सकता है इस से सत्य और तप आदि साधनों का संग्रह करना ही कल्याण मार्ग की प्रथम सीढ़ी है ॥ ४ ॥

संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः । ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति ॥ ५ ॥

संप्राप्य । एनम् । ऋषयः । ज्ञानतृप्ताः । कृतात्मानः । वीतरागाः । प्रशान्ताः । ते । सर्वगम् । सर्वतः । प्राप्य । धीराः । युक्तात्मानः । सर्वम् । आविशन्ति ॥५॥

अ०-(ऋषयः) वेदविदो ज्ञानिनः (एनम्) परमेश्वरम् (संप्राप्य) (ज्ञानतृप्ताः) बाह्यविषयभोगवासनामन्तरेण केवलेनात्मज्ञानेनैव तृप्ताः (वीतरागाः) विगतस्त्यक्तो रागो विषयाणां भोगोत्कण्ठा यैस्तेऽतएव (प्रशान्ताः) गतविषयभोगलौल्याः (कृतात्मानः) शुद्धान्तःकरणाश्च भवन्ति । (ते,युक्तात्मानः) वशीकृतबुद्धयः (धीराः) प्रत्यगात्मविचारे रताः (सर्वतः,सर्वगम्) व्याप्तं परेशम् (प्राप्य) (सर्वमेव) कार्यकारणरूपं जगत् (आविशन्ति) भ्रमन्ति नह्येकत्र प्रदेशे क्वापि बद्धा भवन्ति किन्तु सर्वबन्धनान्मुच्यन्ते ॥

भा०-परमात्मा सदा विरक्तः शान्तः सिद्धो विषयभोगवासनामन्तरेण ज्ञानेनैव तृप्तश्चास्ति

तदुपासकोऽपि तादृशो भवति मुक्तात्मा पुरुषः संसारिजनवदेकदेशो न भवत्यपितु सर्वत्र भ्रमति॥

भावार्थः-(ऋषयः) वेद को जानने वाले पुरुष (एनम्) इस परमेश्वर को (संप्राप्य) प्राप्त हो के (ज्ञानतृप्ताः) बाहरी विषय भोग की वासना के विना ही केवल आत्मज्ञान से सन्तुष्ट (वीतरागाः) विषयभोग की तृष्णा को त्यागने वाले (प्रशान्ताः) विषयभोग की लोलुपता को त्यागे हुए और (कृतात्मानः) शुद्ध अन्तःकरण वाले होते हैं (ते) वे (युक्तात्मानः) बुद्धि को जिन ने वश में किया ऐसे (धीराः) प्रत्यगात्म विचार में रत (सर्वतः,सर्वगम्) सब ओर से सब में व्याप्त परमेश्वर को (प्राप्य) पाकर (सर्वमेव) कार्यकारण रूप जगत् को (आविशन्ति) प्रवेश वा उस में भ्रमण करते हैं कहीं एक स्थान में बद्ध नहीं रहते किन्तु सब प्रकार के बन्धन से छूटते हैं ॥

भा०-परमात्मा सदा विरक्त शान्त स्वयं सिद्ध और विषयभोग की वासनाओं से रहित और केवल ज्ञान से तृप्त है उस का उपासक भी वैसा ही होता है। और मुक्त पुरुष संसारी मनुष्य के तुल्य एक देशी नहीं होता किन्तु सब स्थानों में भ्रमता है॥

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः। ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ ६ ॥

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः। संन्यासयोगात्। यतयः। शुद्धसत्त्वाः। ते। ब्रह्मलोकेषु। परान्तकाले। परामृताः। परिमुच्यन्ति। सर्वे॥ ६॥

भ०—ये (संन्यासयोगात्) दृष्टादृष्टविषयसुखभोगाभिलाषनिराकरणरूपपरापरवैराग्यसम्बन्धात् (यतयः) संयतेन्द्रियक्रियाः। तृष्णात्यागमन्तरेण जितेन्द्रियभावस्यासम्भवादतएव (शुद्धसत्त्वाः) शुद्धं रजस्तमोमलैर्विहीनं सत्त्वं सत्त्वगुणात्मकं बुद्धितत्त्वं सम्पद्यतएषां ते (वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः) वेदान्तस्योपनिषन्निबन्धानाभ्यासेन जायमानं विज्ञानं वेदान्तविज्ञानं तस्यार्थः प्रयोजनं परमात्मा सुनिश्चितो निस्सन्देहं साक्षात्कृतो यैस्ते (ते) (परामृताः) परः सर्वोत्कृष्टोऽमृतो मोक्षो येषां ते जीवन्मुक्तिदशामापन्नाः (सर्वे) योगाभ्यासिनो ज्ञानिजनाः (परान्तकाले) चरमदेहत्यागावसरे। अन्तकालो मृत्युसमयः परश्चासावन्तकालः परान्तालः। नास्ति यस्मात्परोऽन्यो-मृत्युः किन्तु यन्मरणकालानन्तरं मोक्षएव भवति न प्राकृतजनवत्कश्चिज्ज्ञानी पुनर्जन्मोपैति यस्मिन्सति तस्मिन् परान्तकाले (ब्रह्मलोकेषु)। ब्रह्मणइमे लोकाःस्वभूतास्तत्तेषां पृथिव्यादीनामध्यक्षम् यद्वा ब्रह्माणो बृहन्तश्च ते लोका ब्रह्मलोकास्तेषु महत्सु सूर्यादिलोकेषु (परिमुच्यन्ति) पिञ्जरान्निर्गतशकुनिरिव कारागाररूपकलेवरात्पृ-

थग्भूय यथेष्टं निर्बन्धं सर्वलोकेषु भ्रमन्ति नहि ते भित्तिवह्निजलादिना क्वापि निरुध्यन्ते ॥

एतन्मन्त्रस्योत्तरार्द्धेन श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनाऽयमर्थः प्रतिपादितः—ते परामृता उत्कृष्टतया मुक्तिं प्राप्ताः सर्वे जीवात्मानः परान्तकाले प्रात्यहिकमरणापेक्षयाऽवान्तरप्रलये प्राणिसंहारापेक्षया च परः उत्कृष्टोऽन्तकालः प्राणिसंहारसमयो महाकल्पस्तस्मिन्महाप्रलयान्ते पुनः परिमुच्यन्ति संसारदशामाप्नुवन्ति। सम्भवितश्चायमर्थो मुक्तेः पुनरागमनवादिपक्षपोषकश्चास्ति॥

अपुनरावृत्तिवादिनां च विरुद्धः। तत्रभवतां दयादिस्वामिनां चायमेव-राद्धान्तो यन्मुक्तेः पुनरावर्त्तनमिति। स च साधुतरः पक्षस्तस्मात्सोऽर्थोऽपि साधुरेव॥

भा०—अनेकजन्मसु कृतसाधना यदौपनिषदमुपनिषत्सु व्याख्यातं परमात्मतत्त्वं सर्वथा साक्षाज्ज्ञात्वा समाहितचेतसः शुद्धान्तःकरणाश्चरमजन्मनि ज्ञानिनो भवन्ति तदा चरमदेहस्य त्यागकाले शरीररूपबन्धनान्मुक्ता जना अव्याहतगतयः सन्तः सर्वलोकेषु भ्रमन्ति तदा तैः सर्वविधस्वातन्त्र्यात्सर्वथा सुखमेवानुभूयते ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो (संन्यासयोगात्) संसारी वा जन्मान्तर सम्बन्धी विशेष सुख भोग की अभिलाषाओं के त्यागरूप पर वा अपर वैराग्य के होने से (यतयः) कर्म करने में वशीभूत इन्द्रियों वाले [क्योंकि तृष्णा को छोड़े विना जितेन्द्रिय होना असम्भव है इसी से] (शुद्धसत्वाः) रजोगुण तमोगुण से रहित निर्मल सत्व-गुणरूप जिन की बुद्धि हो जाती (वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः) उपनिषद् नामक वेदान्तशास्त्र का अभ्यास करने से हुआ जो ज्ञान उस के प्रयोजन वा फलरूप परमेश्वर को निस्सन्देह साक्षात् जिनने जान लिया (ते) वे (परामृताः) सर्वोत्तम मोक्ष जिन के लिये उपस्थित है वे जीवन्मुक्तिदशा को प्राप्त (सर्वे) सब योगा-भ्यास करने वाले ज्ञानी लोग (परान्तकाले) सब की अपेक्षा अन्तिम मरण समय में [जिस मरने के पश्चात् फिर न मरने पड़े किन्तु मरते ही मोक्ष प्राप्त हो जावे वह परान्तकाल कहाता है] (ब्रह्म-लोकेषु) परमात्मा सर्वस्वामी के पृथिव्यादि लोकों वा बड़े २ सूर्यादि लोकों में (परिमुच्यन्ति) जैसे पिंजरा से पक्षी निकल कर इच्छा पूर्वक घूमता है वैसे सब बन्धनों से पृथक् हो कर यथेष्ट घूमते हैं किसी घर आदि में बन्ध नहीं किया जासकता उस को न अग्नि जला सकता है और न जल डुबा सकता किन्तु अग्नि जल और भित्ति आदि के बीच होकर निकल जाता और उन में भी भ्रमण कर सकता है ॥

इस मन्त्र में श्रीमद्दयानन्दसरस्वती जी ने ऐसा अर्थ किया है कि उत्तमता के साथ मुक्तिदशा को प्राप्त सब जीवात्मा महा-कल्प के अन्त में संसार में आकर फिर जन्म लेते हैं सो ऐसा अर्थ करना भी सम्भव है किन्तु असम्भव नहीं । एक के अनेक अर्थ वा प्रयोजन होते भी हैं यह सब को प्रसिद्ध है इस लिये इस पर विशेष विचार की आवश्यकता नहीं । परन्तु एक मूल

के परस्पर विरुद्ध दो अर्थ नहीं हो सकते उन में एकार्थ अवश्य मिथ्या होगा। यहां मुक्ति से पुनरावृत्तिरूप एक पक्ष वालों के दो अर्थ भी परस्पर विरुद्ध नहीं हो सकते॥

भा०—अनेक जन्मों में मुक्ति के साधनों का जिन्हों ने संचय किया उपनिषदों में विशेषकर व्याख्यात परमात्मा को सब प्रकार से साक्षात् जानकर जिन का चित्त समाहित और अन्तःकरण शुद्ध हुआ ऐसे ज्ञानी पुरुष अन्तिम जन्म में मुक्त होते हैं तब अन्तिम शरीर [कि जिस के छूटने पर फिर जन्म न होगा] रूप बन्धन से छूटे मनुष्य सब रुकावटों से पृथक् हुए सब लोकों में घूमते हैं तब सब प्रकार की स्वतन्त्रता से सर्वथा सुख का ही अनुभव होता है॥६॥

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु। कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकी भवन्ति॥ ७॥

गताः। कलाः। पञ्चदश। प्रतिष्ठाः। देवाः। च। सर्वे। प्रतिदेवतासु। कर्माणि। विज्ञानमयः। च। आत्मा। परे। अव्यये। सर्वे। एकीभवन्ति॥ ७॥

अ०—मुक्तपुरुषस्य (पञ्चदश) प्रश्नोपनिषदः षष्ठप्रश्नस्य चतुर्थमन्त्रे प्रतिपादिताः प्राणाद्याः। [यासामिन्द्रियमनसोरभेदत्वेन पञ्चदशत्वम्] (कलाः) शरीरस्थास्तत्सम्बन्धिनो वा कार्यजगदंशाः (प्रतिष्ठाः) प्रतिष्ठां स्वस्वकारणे स्थैर्यम्।

छन्दोवद्बुद्ध्या वचनव्यत्ययः (गताः) प्राप्ताः (च) (सर्वे) (देवाः) विषयद्योतकाः श्रोत्रादयः (प्रतिदेवतासु) स्वस्वकारणेष्वाकाशादिषु प्रतिष्ठां प्राप्ता भवन्ति (कर्माणि) संचिता वासनाः (विज्ञानमयः) चेतनस्वरूपः (आत्मा) जीवात्मा (च) (सर्वे) स्थूलरूपाभावेन भेदाप्रतीतेः (परे, अव्यये) सर्वोत्कृष्टेऽविनश्वरे (एकीभवन्ति) ॥

भा०-मुक्तिदशायां मुक्तजनस्य सर्वे प्राणादयः शरीरांशा जन्ममरणप्रवर्त्तकाश्च संस्काराः स्वस्वकारणे लीयन्ते शान्तकर्मा जीवात्मा च ससुखं परमात्मन्यवतिष्ठते जले मृदणूनामिव सूक्ष्मत्वाद्भेदो न लक्ष्यतइत्येकत्वं विज्ञेयम् ॥७॥

भावार्थः-मुक्त पुरुष के (पञ्चदश) प्राणादि नाम से प्रश्नोपनिषद् के छठे प्रश्न के चौथे मन्त्र में गिनाये इन्द्रिय और मन को भिन्न २ न मान कर पन्द्रह (कलाः) शरीर में स्थित वा शरीर सम्बन्धी कार्य्य स्थूल जगत् के अंश (प्रतिष्ठाः) स्थिरता (गताः) प्राप्त हुए (च) और (सर्वे) सब (देवाः) विषयों के प्रकाशक कान आदि इन्द्रिय (प्रतिदेवतासु) अपने २ कारण आकाशादि में प्राप्त वा लीन होते हैं (कर्माणि) संचित कर्मों की वासना (च) और (विज्ञानमयः) चेतन स्वरूप (आत्मा) जीवात्मा (सर्वे) ये सब (परे, अव्यये) सब से उत्तम अविनाशी परमेश्वर में (एकीभवन्ति) एकत्र हो जाते हैं ॥

भा०-मुक्ति दशा में मुक्त पुरुष के सब प्राणादि शरीर के अंश तथा जन्म मरण के हेतु संस्कार भी अपने २ कारणों में लीन हो जाते हैं और शान्त हो गये कर्म जिस के ऐसा जीवात्मा भी सुख पूर्वक परमात्मा में ठहरता है। जैसे जल में सूक्ष्ममट्टी घुल जाने से उस से भिन्न नहीं जान पड़ती और न भिन्न मानने का व्यवहार होता वैसे ही यहां भी सूक्ष्मता से भेद प्रतीत न होने के कारण अभेद कहा गया वास्तव में तो भेद ही है ॥ ७ ॥

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ ८ ॥

यथा। नद्यः। स्यन्दमानाः। समुद्रे। अस्तम्। गच्छन्ति। नामरूपे। विहाय। तथा। विद्वान्। नामरूपात्। विमुक्तः। परात्। परम्। पुरुषम्। उपैति। दिव्यम् ॥ ८ ॥

अ० -(यथा) (स्यन्दमानाः) प्रवहमानाः (नद्यः) गङ्गाद्याः (नामरूपे) इयं गङ्गेयं यमुनेत्येवंविधे (विहाय) त्यक्त्वा (समुद्रे) (अस्तम्) अदृश्यभावम् (गच्छन्ति) (तथा) मुक्तिदशोन्मुखः (नामरूपात्) देवदत्तादिनामतः शुक्लादिरूपतश्च चरमप्रयाणकाले (विमुक्तः) दूरीभूतः (परात्परम्) सूक्ष्मात्सूक्ष्ममुत्तमादुत्तमं च (दिव्यम्) दिवि स्वस्मिन्नेव प्रकाशस्वरूपे वर्त्तमानम् (पुरु-

षम्) पूर्णं व्याप्तं परेशम् (उपैति) प्रीतिभावेन सन्निहितो भवति ॥

भा०–यथा समुद्रे गतानां नदीनां पृथक् २ नामानि रूपाणि च जनैर्न व्याप्रियन्ते तासामप्राधान्यात्सागरस्य च प्राधान्यात्प्रधानशब्देन व्यापारस्तथैव प्रधानं सर्वाध्यक्षं परमात्मानमाश्रितस्य जीवात्मनः शरीरसम्बन्धीनि नामरूपाणि न व्याप्रियन्ते। भेदस्तु जलभेदवत्सूक्ष्मोऽवगन्तव्यो धीमद्भिः ॥ ८ ॥

भाषार्थः–(यथा) जैसे (स्यन्दमानाः) बहती हुई (नद्यः) गङ्गादि नदियां अपने २ (नामरूपे) इस का यह नाम वा यह रूप श्वेतादि है इस प्रकार नाम और रूपों को (विहाय) छोड़ कर (समुद्रे) समुद्र में (अस्तम्, गच्छन्ति) अदृष्ट हो जाती हैं (तथा) वैसे मुक्तिदशा की ओर झुका हुआ अन्तिम मरण समय में (नामरूपात्) देवदत्तादि नाम और शुक्लादिरूप से विमुक्तः छूटा (परात्परम्) सूक्ष्म से सूक्ष्म और उत्तम से उत्तम (दिव्यम्) अपने प्रकाशस्वरूप में वर्त्तमान (पुरुषम्) पूर्णव्याप्त परमेश्वर को (उपैति) प्रीतिपूर्वक प्राप्त होता निकट पहुंच जाता है ॥

भा०–जैसे समुद्र में पहुंची हुई नदियों के पृथक् २ नाम और रूप का मनुष्य व्यवहार नहीं कर सकते कि यह गङ्गा वा यह यमुना है। क्योंकि वहां नदियों की गौणता और समुद्र की प्रधानता है वैसे ही सब के स्वामी सब से श्रेष्ठ प्रधान परमेश्वर को प्राप्त हुए अप्रधान जीवात्मा के शरीर सम्बन्धी नामरूपों का व्यवहार नहीं रहता किन्तु समुद्र के जल में गङ्गादि के जल के पर-

माणु जैसे अवश्य अपने स्वरूप से भिन्न रहते हैं वैसे सूक्ष्म भेद यहां भी रहता ही है ॥ ८ ॥

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मै-व भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भव-ति । तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति॥

सः । यः । ह । वै । तत् । परमम् । ब्रह्म । वेद । ब्रह्म । एव । भवति । न । अस्य । अब्रह्मवित् । कुले । भवति । तरति । शोकम् । तरति । पाप्मानम् । गुहाग्रन्थिभ्यः । विमुक्तः । अमृतः । भवति ॥९॥

अ०-अधुना ग्रन्थोपसंहारे फलस्तुतिमाह-(ब्रह्म, एव, भवति) ब्रह्म हि निरवधिसत्तात्मकं भवति नहि तद्वदन्यःकश्चिन्नित्योऽस्तीति प्रकारेण (सः, यः, ह, वै) कश्चिदेवाधिगतयाथातथ्यो विद्वान् (तत्) परोक्षम् (परमम्) सर्वोत्कृष्टम् (ब्रह्म) (वेद) जानाति (अस्य) ब्रह्मविदः (कुले) पुत्रपौत्रादिसन्ततौ शिष्यशिक्षकपरम्परायाः प्रचुरप्रचारकारणात् कश्चिदपि (अब्रह्मवित्) अवेदज्ञः (न) न भवति किन्तु सर्वे विद्वांसएव जायन्ते आत्मज्ञो विद्वान् (शोकम्, तरति) (पाप्मानम्, तरति) (गुहाग्रन्थिभ्यः) वासनारूपेणावस्थितरागद्वेषसंस्कारेभ्यः (विमुक्तः) (अमृतः) मुक्तः (भवति) ॥

भा०-परमात्मा सर्वद्रष्टा सर्वदिक्षूव्यवस्थितस्तस्यसत्तायां शङ्काविहीनः कश्चिदेव साक्षाद्ब्रह्मज्ञानी भवति यश्चैवं भवति सएव शोकमोहादिदुःखसागरस्य पारं गत्वा मुक्तो भवति । तस्य कुले च मूर्खा नोत्पद्यन्ते ॥ ९ ॥

भाषार्थः-अब इस ग्रन्थ की समाप्ति में फल दिखाते हैं.-(ब्रह्म, एव, भवति) ब्रह्म ही असीम स्थिति वाला है किन्तु उस के तुल्य अन्य कोई नित्य वस्तु नहीं इस प्रकार से (सः, यः, ह, वै) जो कोई ही यथार्थ भाव को प्राप्त हुआ विद्वान् (तत्) उस परोक्ष (परमम्) सब से उत्तम (ब्रह्म) ब्रह्म को (वेद) जानता है (अस्य) इस ब्रह्मज्ञानी पुरुष के (कुले) पुत्र पौत्रादि वा शिष्य प्रशिष्यादि में पठन पाठन की परम्परा का विशेष प्रचार होने से कोई भी (अब्रह्मवित्) वेद का न जानने वाला (न, भवति) नहीं होता किन्तु सब वा प्रायः विद्वान् ही होते हैं । वह आत्मज्ञानी विद्वान् (शोकम्, तरति) शोक के पार और (पाप्मानम्, तरति) पाप वा दुष्कर्मों से पृथक् हो जाता है (गुहाग्रन्थिभ्यः) वासना रूप से अवस्थित रागद्वेष सम्बन्धी संस्कारों से (विमुक्तः) पृथक् हुआ (अमृतः) मुक्त (भवति) होता है ॥

भा०-परमात्मा सब का द्रष्टा सब दिशाओं में स्थित है उस की सत्ता में शङ्का रहित कोई ही साक्षात् ब्रह्मज्ञानी होता है। जो ऐसा होता है वही शोक मोहादि से होने वाले दुःखसागर के पार पहुंचा मुक्त होता है और उस के कुल में मूर्ख नहीं उत्पन्न होते ॥ ९ ॥

तदेतदृचाभ्युक्तम्-क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः । स्वयं जुह्वते ए-

ऋषिं श्रद्धयन्तस्तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम् ॥

तत् । एतत् । ऋचा । अभ्युक्तम् । क्रियावन्तः । श्रोत्रियाः । ब्रह्मनिष्ठाः । स्वयम् । जुह्वते । एकर्षिम् । श्रद्धयन्तः । तेषाम् । एव । एताम् । ब्रह्मविद्याम् । वदेत । शिरोव्रतम् । विधिवत् । यैः । तु । चीर्णम् ॥ १० ॥

अ०--(तदेतदृचाभ्युक्तम्) अस्मिन्प्रसङ्गे वेदमन्त्रः प्रमाणम् (क्रियावन्तः) वेदोक्तकर्मानुष्ठातारः (श्रद्धयन्तः) श्रद्धान्विताः (ब्रह्मनिष्ठाः) ब्रह्मणि निष्ठा चेतोवृत्तिर्येषां ते (श्रोत्रियाः) वेदानामध्येतारो ज्ञातारश्च ज्ञानिनः (स्वयम्) न केनापि प्रयुक्ताः (एकर्षिम्) एको वेदरूपी ऋषिः प्रतिपादकोऽस्य तमग्निहोत्रादियज्ञम् (जुह्वते) फलाकाङ्क्षाराहित्येन कुर्वन्ति (तेषाम्, एव) तेभ्यएव (एताम्) मुण्डकनाम्नोपनिषन्नाम्ना वा प्रसिद्धम् (ब्रह्मविद्याम्) (वदेत) उपदिशेत तेभ्यः केभ्यस्तदाह-(यैस्तु) (शिरोव्रतम्) धर्म्याणां शुभगुणानां धारणं सज्जनानां सत्कारश्च शिरसि करणं जटिलब्रह्मचारित्वं वा (चीर्णम्) समापितं सेवितं स्वीकृतं च तेभ्यः ॥

भा०—वेदोक्तोऽयं दृढः सिद्धान्तो यत्सत्क्रियां धर्म्यां कुर्वाणाएव सांसारिकपारमार्थिकसुखभाजो भवितुमर्हन्ति तेभ्योऽधिकारिभ्य एव ज्ञानोपदेशः कार्यो नानधिकारिभ्यः ॥ १० ॥

भाषार्थः-(तदेतदृचाभ्युक्तम्) अर्थात् इस पूर्वोक्त विषय में ऋग्वेद का भी प्रमाण है कि (क्रियावन्तः) वेदोक्त कर्मकरने वाले (श्रद्दधानाः) श्रद्धायुक्त (ब्रह्मनिष्ठाः) ब्रह्म में निष्ठा अर्थात् चित्त की वृत्ति जिन को है वे (श्रोत्रियाः) वेदों के पढ़ने और जानने वाले ज्ञानी लोग (स्वयम्) किसी से प्रेरणा किये विना ही (एकर्षिम्) एक वेद नामक ऋषि जिस का जताने वाला है ऐसे अग्निहोत्रादि यज्ञ को (जुह्वते) फलभोग की काङ्क्षा को छोड़ कर सेवन करते हैं (तेषाम्, एव) उन्हीं के लिये (एताम्) इस मुण्डक नाम से प्रसिद्ध (ब्रह्मविद्याम्) ब्रह्मविद्या को (वदेत) कहे वा उपदेश करे। जिन को उपदेश किया जाय वे कैसे हों (यैः) जिन्हों ने (शिरोव्रतम्) धर्मसम्बन्धी शुभ गुणों का धारण वा सज्जनों का सत्कार अपने शिर लेना वा जटिल दशा में ब्रह्मचर्य व्रत को (चीर्णम्) सेवनकर पूरा किया वा दृढ स्वीकार किया हो॥

भावार्थः—वेदोक्त सिद्धान्त दृढ़ यह है कि जो धर्म सम्बन्धी श्रेष्ठ कर्म को करते हुए ही संसार परमार्थ के सुख भागी मनुष्य हो सकते हैं। उन अधिकारियों के लिये ही ज्ञान का उपदेश करना चाहिये किन्तु अनधिकारियों को नहीं ॥ १० ॥

तदेतत्सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच नैतदचीर्णव्रतोऽधीते। नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ॥ ११ ॥

तत् । एतत् । सत्यम् । ऋषिः । अङ्गिराः । पुरा । उवाच । न । एतत् । अचीर्णव्रतः । अधीते । नमः । परमऋषिभ्यः । नमः । परमऋषिभ्यः ॥ ११ ॥

अ०-(पुरा) पूर्वकाले (अङ्गिराः) (ऋषिः) शौनकाय (अचीर्णव्रतः) विनष्टनियमो दुराचारोऽजितेन्द्रियः पुरुषः (एतत्, न, अधीते) नाध्येतुमर्हति (तत्, एतत्, सत्यम्) अङ्गिराऋषिरुवाच । इदानीं पुस्तकसंग्रहीता कश्चिदृषिः स्वतःपूर्वजान् नमस्करोति (परमऋषिभ्यः, नमः । परमऋषिभ्यः, नमः) सर्वोत्तमऋषिज्ञानिसत्कर्मिभ्यो मुहुर्मुहुरस्माकं नमोऽस्तु यैः परम्परया वेदविद्या प्रचारिता ॥

भा०-यथोषरभूमावुप्तं बीजं नैव प्ररोहति तथैवानधिकारिणो विद्यादानश्रमस्य नैष्फल्यं मत्वा-न दातव्येति सज्जनानामनुभवः । अत्राङ्गिरसः प्रथमपुरुषस्थत्वेन पुराशब्देन चानुमीयते तस्माद्भिन्नेन केनचिदृषिणेयमुपनिषन्निर्मिता ॥ ११ ॥

भावार्थः=(पुरा) पूर्व काल में (अङ्गिराः, ऋषिः) अङ्गिरा ऋषिने (उवाच) कहा कि (अचीर्णव्रतः) नियम रहित व्यवहार करने वाला दुराचारी लम्पट पुरुष (एतत्, न, अधीते) इस ब्रह्मज्ञान सम्बन्धिनी विद्या को नहीं पढ़ सकता (तत्, एतत्, सत्यम्) सो यह सज्जनों का विचार सत्य ही है । अब इस पुस्तक

का बनाने वाला कोई ऋषि अपने से पूर्वज वेदादि विद्या के प्रचारक अङ्गिरादि ऋषियों को नमस्कार करता है कि (परमऋषिभ्यः, नमः । परमऋषिभ्यः, नमः) श्रेष्ठ कर्म करने वाले सर्वोत्तम ज्ञानी विद्वान् पुरुषों को वार २ हमारा नमस्कार हो॥

भा०—जैसे ऊषर भूमि में वोया वीज नहीं जमता वैसे अनधिकारी को विद्या देने में परिश्रम करना निष्फल है इस से उन को विद्या न देना चाहिये यह सज्जनों का अनुभव है । यहां पुरा शब्द के पढ़ने और अङ्गिरा को प्रथम पुरुषस्थ रखने से अनुमान है कि यह उपनिषद् अङ्गिरा से भिन्न किसी ऋषि का बनाया है ॥११॥

इति तृतीय मुण्ड के द्वितीयः खण्डः ॥

इति मुण्डकोपनिषत्समाप्ता ॥

यद्यपि सर्वासूपनिषत्सु सामान्येन ब्रह्मज्ञानमेव विषयः । तथाप्यस्यां मुण्डकोपनिषदि कश्चित्तस्यैवावान्तरभेदो वर्णितएवं सर्वासु पृथक्पृथगवान्तरभेदाएव सन्ति । यथा पाकसाधनसञ्चयएव पाकसिद्धौ मुख्यं कारणम् । तथैव सत्सु साधनेषु ब्रह्मज्ञानमपि सुलभमेव । अस्यां मुण्डकोपनिषदि एकएव प्रश्नः-कस्मिन्विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति । यस्य विज्ञानं सर्वस्य विज्ञाने कारणं तस्य ज्ञानोपाया अपि वाच्या इत्यर्थादापन्नं भवति । अत्र सर्वसाधनेषु द्विविधपराऽपरविद्यायाएव प्राधान्येन साधनकोटौ वर्णनमिति । सत्यां विद्यायां सर्वस्य ज्ञेयस्य ज्ञानं

सुलभम् । तस्मादादौ विद्याऽध्येतव्या ज्ञातव्या च तदनन्तरं विद्याचक्षुषा परमात्मज्ञानं सम्पादनीयमिति ग्रन्थाशय इत्यलं बहुना ॥

भाषार्थः-यद्यपि सब उपनिषदों में ब्रह्मज्ञान ही मुख्य विषय है तो भी इस मुण्डकोपनिषद् में उसी विषय का कोई अवान्तर भेद कहा गया है इसी प्रकार सब उपनिषदों में पृथक् २ अवान्तर भेदों का वर्णन है । अर्थात् प्रायः सब उपनिषदों में ब्रह्मज्ञान के साधन कहे गये हैं । जैसे भोजन पकाने के लकड़ी आटा आदि साधनों का इकट्ठा करना ही भोजन बन जाने में मुख्य कारण है। वैसे ही साधनों के होने पर ब्रह्मज्ञान भी सुलभ है । इस मुण्डकोपनिषद् में एक ही प्रश्न किया गया है कि किस के जानने में सब कुछ जान लिया जाता है । जिस का ज्ञान सब के ज्ञान का कारण है उस को जानने के उपाय भी कहने चाहिये यह अर्थापत्ति से सिद्ध है। यहां पर अपर दो प्रकार की विद्या को सब साधनों में प्रधान साधन कहा है क्योंकि विद्या होने पर ही सब जानने योग्य का ज्ञान होना सुलभ है । इस से पहिले विद्या को पढ़ जान के विद्या रूप नेत्र से परमात्मा का ज्ञान करना चाहिये यह मुख्य इस ग्रन्थ का आशय है ॥